बन्दी-जीवन

द्वितीय भाग

शचीन्द्रनाथ सान्याल

प्रकाशक
शचीन्द्रनाथ सान्याल
नयागाँव, लखनऊ

चतुर्थ संस्करण]   १९३८ ई०   [मूल्य १।)

प्रकाशक—
शचीन्द्रनाथ सान्याल
नयागाँव, लखनऊ.

मुद्रक—
पं० राजराजेश्वरप्रसाद भार्गव,
अध्यक्ष—अवध-प्रिंटिंग-वर्क्स,
चारबाग़, लखनऊ



लेखक, अंडमन से लौटने के बाद।

समर्पण

जिन को जीवन में नाना रूप से दुःख-कष्ट ही देता रहा, उत्कट इच्छा रहने पर भी सांसारिक रीति से जिन को कुछ भी सुखी नहीं कर सका, दिन और रात सुख और दुःख में, सम्पद् और विपद् में, हर घड़ी जिनकी याद कर के एक दम आनन्द और दुःख से विह्वल-सा हो उठता हूँ, जो मेरे दुःखों में साझी हो कर केवल दुःख ही दुःख पाती रहीं, अपनी उन्हीं परम स्नेहमयी जननी के श्रीचरणों में यह अपना क्षुद्र-सा ग्रन्थ श्रद्धा और भक्ति-सहित उत्सर्ग करता हूँ।

शचीन्द्रनाथ

अनुवाद की आलोचना।

"बन्दी-जीवन" का पहला भाग हिन्दी में मैंने पहले-पहल सन् १६२३ में पढ़ा था। उस में कुछ ऐसी आन्तरिकता और विचारों को जगाने की अमोघ शक्ति थी कि पढ़ते-पढ़ते बार-बार मेरे हाथ से किताब बन्द हो जाती, और घड़ी-घड़ी भर छत की ओर देखते हुए मैं सोचने में लीन हो जाता। उसकी विवेचनाशैली ने मुझे इतना प्रभावित किया कि मेरी इच्छा आलोचना लिखने की हुई। किन्तु, 'उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः!' साढ़े तीन बरस तक वह इच्छा दिल की दिल में दबी रही। मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था कि उसके दूसरे भाग का हिन्दी अनुवाद मुझे ही करना होगा। आज तक मैंने किसी ग्रंथ का अनुवाद नहीं किया। अनुवादक की ऊँची गद्दी पर बैठने की महत्वाकांक्षा न कभी मेरे दिल में थी और न होगी। प्रस्तुत पुस्तक का अनुवाद यदि मैंने किया है तो केवल कुछ अपने बंधुओं और मित्रों के पारस्परिक कार्य को निबाहने के लिए। यह अनुवाद करने के कारण, क्या मैं उसकी

आलोचना के अधिकार से वंचित हो सकता हूँ? प्रत्युत, इस अनुवाद के कारण ही तो मुझे "बंदी-जीवन" का अधिक मनन करने का अवसर मिला है, और वह दबी हुई इच्छा फिर से पनप उठी है।

सच कहें तो यह "बन्दी-जीवन" भारतवर्ष के आधुनिक इतिहास के एक महत्वपूर्ण अध्याय का प्रामाणिक विवेचन है। हमें इस के लेखक के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, तो भी उन के ग्रन्थ को पढ़ कर इतना हम निश्चय से कह सकते हैं कि उनकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण और मर्मवेधी है, और पैनी आँखों के पीछे एक प्रबल छुपा कैमरा है जो देखी चीज़ का फ़ोटो फ़ौरन ले लेता है। एक सैनिक का जीवन बिताते हुए उन्हों ने अपने मस्तिष्क में साहित्यिक सुरुचि का जैसा पोषण किया है उसे देख कर दंग रह जाना पड़ता है।

किन्तु इन गुणों से कहीं अधिक महत्व की वस्तु है उनकी अन्त-र्दृष्टि, उन की आन्तरिकता। जगह-जगह अपनी कहानी को छोड़ कर लेखक अपने अन्दर और अपने दल के अन्दर एक झाँकी लगाते हैं और अपने भावों और विचारों की ऊँच-नीच को एक प्रबल प्रकाश में परखते हैं। वे कहते हैं कि बंगाली नवयुवक केवल कुछ ख़ास शिका-यतों को रफ़ा करने के लिए किन्हीं नैमित्तिक कारणों से या केवल आकस्मिक बनावों के कारण विप्लव दल में शामिल न हुए थे, अवश्य ही उन में कुछ त्रासवादी (Terrorist) भी थे, किन्तु अधिकांश युवक एक ऊँचे आदर्श की साध में; अपने सम्पूर्ण जीवन को सार्थक

बनाने की खोज में अपने मनुष्यत्व का, अपने व्यक्तित्व का, अपने 'स्व' का सर्वांगीण स्वतन्त्र विकास करने की ख़ातिर इस व्रत में दीक्षा लेते थे। इस ग्रन्थ में की हुई अनेक अन्तर्मुख आलोचनाएँ लेखक के इस कथन को किस ख़ूबी से पुष्ट करती हैं।

और अपने चरित्र के इस गुण में बंगाली नवयुवकों ने अपनी शुद्ध भारतीयता का परिचय दिया है। भारतीय स्वभाव से दार्शनिक है। वह स्वभाव से अपने जीवन की दार्शनिक मीमांसा करता है, किसी मार्ग में पड़ने से पहले उस का मन उस की पूर्णता को तात्विक दृष्टि से समझना चाहता है। इस दार्शनिक वृत्ति का व्यावहारिकता से कोई विरोध नहीं है। किन्तु हमारा तो विचार है, जितना अधिक हम एक प्रश्न की दार्शनिक विवेचना करेंगे, उतनी ही पूर्णता से उसे सुलझा पायेंगे। "बन्दी-जीवन" के लेखक की यही दार्शनिक अंतर्दृष्टि उनकी घटनाओं की कहानी को गौरवमय बना देती है।

किंतु यह अनुवादक तो एक इतिहास का विद्यार्थी है, और वह पाठकों का ध्यान सब से अधिक इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक विवेचनशैली की ओर खींचना चाहता है। कोई दिन था जब राजवंशों और "बड़े" आदमियों के जीवन की घटनाओं का उल्लेख करना ही इतिहास का काम समझा जाता था। आज यह कहा जाता है कि इतिहास का कार्य, जातियों और समाजों के आरोह-अवरोह, उत्थान-पतन की घटनाओं का वर्णन और व्याख्या करना, उन की परम्परा को समझाना है। किन्तु

सच्चे ऐतिहासिक के कर्त्तव्य की यहां पर समाप्ति नहीं होती, प्रत्युत आरम्भ ही होता है। घटनाओं की परम्परा को स्पष्ट करना तो इतिहासानुशीलन का केवल आरम्भ है, इतिहास का ठीक-ठीक मनन तो तब होता है जब हम उन घटनाओं को पैदा करनेवाली प्रेरणाओं—उन घटनाओं को प्रेरित करने वाले भावों, विचारों और प्रवृत्तियों तक पहुंच पाते हैं। एक उदाहरण लीजिए। गुरु गोविन्दसिंह ने, कहते हैं, ५२ कवि अपने पास रक्खे थे और यह तो निश्चित है कि उन्होंने राजसी ठाट धारण किया था। प्रो० यदुनाथ सरकार तथा डा० रवीन्द्रनाथ टाकुर ने इस घटना की यों व्याख्या की है कि गुरु गोविन्दसिंह ने एक सन्त की सादगी की अपेक्षा राजकीय मान को अधिक पसन्द किया, दूसरे राजाओं की तरह उन्होंने दरबारी ख़ुशामदी कवि जमा किये और इस प्रकार के आचरण से गुरु नानक के विशाल उदार धर्म को एक संकीर्ण सैनिक पन्थ बना दिया। हमारा विचार है यदु बाबू और रवि बाबू ने गुरु गोविन्दसिंह की प्रेरणा को बिलकुल ग़लत समझा है*। कवियों को इकट्ठा करने का उद्देश्य पंजाब में एक नई साहित्यिक जागृति उत्पन्न करना था और गुरु गोविन्दसिंह ने नानक के धर्म को संकीर्ण नहीं किया, प्रत्युत उन के भक्तिमार्ग में कर्म का पुट दे दिया। घटनायें तो एक ही हैं, पर उन

*उनकी आलोचना करने की इच्छा भी, कई बरसों से "दरिद्रों के मनोरथों" की तरह, दिल में दबी पड़ी है।

की प्रेरणा को भिन्न-भिन्न प्रकार से समझने से ज़मीन आसमान का अंतर पड़ जाता है।

और घटनाओं की प्रेरणा को समझने और स्फुट करने में श्रीयुत सान्याल ने वह सामर्थ्य दिखलाया है जो विरले ऐतिहासिकों को प्राप्त होता है। आप एक बहुत पढ़ने वाले विद्वान् नहीं हैं, यह बात आप की पुस्तक से जगह-जगह प्रकट होती है,—पिंगले का पूरा नाम याद न आने पर आप सीधा कहते हैं, भूल गया, रौलेट रिपोर्ट उठाकर ढूँढ नहीं लेते। किंतु वह गहरी अंतर्दृष्टि जो पढ़ने-लिखने से प्राप्त नहीं होती, जो एक सच्चे ऐतिहासिक की जन्मसिद्ध पूँजी, जन्मसिद्ध प्रतिभा का अंश होती है, श्रीयुत सान्याल को प्रकृति ने खुले हाथों दी है। व्यक्तियों के दलों के आन्तरिक भावों को वे खूब पहचानते हैं। सिक्खों के, बंगालियों के, मुसलमानों के और अन्य भारतवासियों के दिलों को, मानो चीर कर वे पाठक के आगे रख देते हैं। सिक्ख-चरित्र के गुण-दोष को उन्होंने यदु बाबू से कहीं अधिक अच्छा समझा है। उन की इस सफलता का यह भी तो कारण है कि वे केवल इतिहास लेखक नहीं हैं, प्रत्युत जिस इतिहास को वे लिख रहे हैं उसके बनानेवालों में से हैं; उस इतिहास के पात्रों के वे जीवन-मरण के खेल में साथी थे। यदि वे उन के भावों को पहचानते नहीं तो उनके नेता ही कैसे बनते? सच्चे विप्लवनेता में भी तो ठीक वही गुण चाहिए जो एक सच्चे इतिहास-लेखक में होना चाहिए।

विप्लव का प्रयास व्यर्थ क्यों हुआ, इस प्रश्न के विचार में लेखक ने सचमुच उस गहरी अन्तर्दृष्टि और विचारशक्ति का परिचय दिया है। दौर्भाग्य से उन की विचारशक्ति का सिक्का मानते हुए भी हम उन के परिणामों से सहमत नहीं हो सके। वे कहते हैं उपयुक्त नेताओं और विचारकों का अभाव ही उस की व्यर्थता का असल कारण हुआ है। हमें इस पर यह कहना है कि किसी समाज की प्रगति पर एक-दो व्यक्तियों के होने न होने का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, जातीय आन्दोलन अनेक व्यक्तियों के छोटे-छोटे कार्यों से मिल कर बनते हैं। नेता और विचारक होने योग्य प्रतिभा रखने वाले अनेक व्यक्ति इसी दल में रहे होंगे। जब तक उन के नेतृत्व और उन की कल्पनाओं को चरितार्थ करने के लिए अनुकूल सामग्री तैयार न हो तो वे क्या कर सकते हैं? सैकड़ों युवकों के त्याग, तप और सेवा के छोटे-छोटे कार्यों से जिस आदर्श की दिशा सूझ न चुकी हो, उस आदर्श की कल्पना जनता के सामने रख कर कौन विचारक या नेता पागल कहलाने की हिम्मत करेगा? विचारक और नेता अपने समय के प्रवाह के सूचक-मात्र होते हैं। वे उस से बहुत आगे नहीं बढ़ सकते। यदि सन् १९०५ से लगा कर १९१८ तक इन गुमनाम युवकों ने देश के कार्य के लिए जेल जाने का रास्ता न बना दिया होता, तो न तो रवि बाबू का 'गोरा' ही जेल गया होता और न महात्मा गांधी को ही जेल के अन्दर तपोमन्दिर दीख पड़ता। यह ठीक है कि विचारक जो ऊँचा आदर्श जनता को दिखा

देते हैं वह अनेक जनसाधारण को ऊपर उठाने की शक्ति रखता है, किन्तु यह भी याद रहे कि जिस ऊँचाई पर खड़े हो कर वे आदर्श की ओर हाथ बढ़ाते हैं वह ऊँचाई भी अनेक जनसाधारण की लाशों के ढेर से बनी होती है। दोनों का आगे बढ़ना या ऊपर उठना परस्पर-सापेक्ष है।

इसलिए इस प्रथम विप्लवयुग में कोई प्रतिभावान् नेता पैदा नहीं हुआ, यह एक आकस्मिक घटना नहीं है, यह भी किसी कारण का फल है। नेता क्यों पैदा नहीं हुए? दल उन्हें क्यों पैदा न कर सका? क्यों कि यह प्रथम प्रयास था। और वह विप्लव का प्रयास इसी लिए विफल हुआ क्यों कि यह पहला ही प्रयास था। बच्चे का खड़ा हो कर चलने का पहला प्रयत्न जिस कारण "विफल" होता है, ठीक उसी कारण से विप्लव का यह पहला प्रयास भी "विफल" हुआ था।

स्थान थोड़ा है, नहीं तो इस मनोरञ्जक विषय पर और विचार करते। किन्तु बन्द करने से पहले मूल पुस्तक तथा उस के लेखक का कुछ व्यक्तिगत परिचय हिन्दी जगत को देना आवश्यक है। १९२० में आप कालेपानी से लौटे। '२२ में 'बन्दी-जीवन' का प्रथम भाग छपा। '२४ में दूसरा भाग बंगाली की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "बंगवाणी" में छपा करता था। इसी बीच शायद अक्तूबर १९२४ में बंगाल आर्डिनैंस जारी हुआ, और बड़ी धर-पकड़ हुई। अख़बारों में श्री सान्याल के पकड़े जाने की बात भी छपी, पर पीछे पढ़ा कि आप के नाम से घोषणापत्र निकला

है जिस में आपने लिखा है कि मैं अभी तक सुरक्षित हूँ। 'बंगवाणी' में आप के लेख जारी रहे, और इसी बीच 'बंदी-जीवन' दूसरा भाग पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। बंगाल कौंसिल में जब होममेम्बर सर ह्यू स्टीफ़न्सन ने आर्डिनैंस एक्ट पेश किया तब श्री सान्याल का और उनके घोषणापत्र का विशेष रूप से उल्लेख किया।

उसके बाद फ़रवरी १९२५ में आप के पकड़े जाने की बात फिर पढ़ी और फिर उस का निषेध नहीं हुआ। बाद में बाँकुड़ा सिडीशन केस में आप को दो वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा हुई। सन् १९२४ के अंत या '२५ के शुरू में 'रिवोल्यूशनरी' नाम के पर्चे उत्तर भारत में एक ही साथ बँटे थे। उनके लिफ़ाफ़ों पर के पतों के हस्ताक्षर, सरकारी हस्ताक्षर-विशेषज्ञ की गवाही के आधार पर श्री सान्याल के बतलाये गये, और इस प्रकार इस राजद्रोही पर्चे का प्रचार करने के अपराध पर आप को दो बरस की जेल दी गई। यह अभियोग उपहासास्पद जान पड़ता है। 'बन्दी-जीवन' प्रथम भाग का, बँगला में जो दूसरा संस्करण छपा है उस की एक टिप्पणी में लिखा है कि वह अभियोग बिलकुल झूठा था। इधर लखनऊ में "काकोरी षड्यन्त्र केस" नाम का जो मुक़दमा चला था उसमें भी श्री सान्याल और उनके एक भाई धर घसीटे गये थे। यहाँ तो आपको "रिवोल्यूशनरी" पर्चे का लेखक भी कहा गया था।

आप मुक़द्दमे में अपनी वकालत स्वयं करते और कोर्ट में ख़ूब रंग

बनाये रहते थे। स्पेशल मैजिस्ट्रेट मि० ऐनुद्दीन ने आपकी योग्यता की खूब तारीफ़ की थी।

सेशन जज ने आप को उस मुक़दमे में आजीवन कालेपानी की सज़ा दी और छोटे भाई को पाँच साल की सख़्त क़ैद हुई। चीफ़ कोर्ट में काकोरी षड्यन्त्र केस की अपील हुई पर आपने चीफ़ कोर्ट में अपील न की और वह सज़ा बहाल रही। सम्भवतः आज कल आप लखनऊ सेंट्रल जेल में हैं।

आप के पीछे आप की माता श्रीयुक्ता क्षीरोदवासिनी देवी जी का स्वर्गवास हो गया।

इस पुस्तक में जिन सब टिप्पणियों के अंत में 'लेखक' नहीं लिखा है, उन्हें अनुवादक की समझना चाहिए।

चतुर्थ संस्करण की भूमिका

"बन्दी-जीवन" द्वितीय भाग की हिन्दी मेरी नहीं है। इस के अनुवादक थे प्रसिद्ध ऐतिहासिक अध्यापक श्रीजयचंद्रजी विद्यालंकार। आप ने अनुवाद की आलोचना करते समय यह कहा था कि "बन्दी-जीवन" के लेखक के साथ उन का परिचय न था। समय के फेर में पड़ कर आप को ऐसा लिखना पड़ा था। उस युग का यथार्थ इतिहास अभी लिखना बाक़ी है। सन् १९२० के बाद उत्तर भारत में जो क्रांतिकारी आंदोलन हुआ था उस का एक धारावाही इतिहास इस साल के अगस्त महीने से साप्ताहिक 'प्रताप' में लिखना प्रारंभ किया है। उस युग के इतिहास में जयचंद्रजी का क्या हाथ था, इसका उल्लेख यथास्थान किया जायगा।

"बन्दी-जीवन" द्वितीय भाग के एक स्थान में मैंने दिल्ली और हस्तिनापुर के बारे में कुछ ग़लत लिखा था। मुझे मालूम था कि दिल्ली और हस्तिनापुर एक स्थान नहीं है। मैंने दिल्ली, इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर को जब एक ही चित्रण में खींचा था तो मेरा तात्पर्य इतना ही

था कि भारत के इतिहास में इन तीनों स्थानों का उल्लेख एवं इन तीनों स्थानों के ऐतिहासिक महत्व मानो एक साथ ग्रथित हैं।

भारतीय विप्लव-आन्दोलन का एक सर्वांगीण एवं सम्पूर्ण इतिहास आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली का अनुसरण करके लिखने की प्रबल इच्छा है। भारतीय विप्लव-आन्दोलन क्यों व्यर्थ हुआ इसका विवेचन उसी ग्रंथ में करने का इरादा है। इसलिए इस का विवेचन इस स्थान में नहीं किया गया।

शीघ्रातिशीघ्र इस पुस्तक के छपवाने के कारण बहुत त्रुटियाँ रह गई हैं। आशा है अगले संस्करण में ये सब त्रुटियाँ नहीं रहेंगी।

इस ग्रंथ में एक-दो स्थान को छोड़ कर कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

आक्टोबर १९३८ } विनीत—
शचीन्द्रनाथ

पिछले युद्ध के समय उत्तर भारत में एक किनारे से दूसरे किनारे तक विप्लव की कैसी भारी तैयारी हुई थी सो 'बन्दी-जीवन' के प्रथम भाग में दिखलाने का यत्न कर चुका हूँ। दूसरे भाग की कहानी ठीक उस के बाद की घटनाओं से आरम्भ की गई है। पंजाब कि विप्लव-योजना विफल हो जाने के बाद फिर से किस प्रकार विप्लव की योजना होती है और वह भी विश्वासघात के कारण किस प्रकार विफल हो जाती है, यही सब कहानी इस भाग में सुनाई गई है।

'बन्दी-जीवन' की कहानी लिखने बैठा था तो सोचा था कि मैं क्यों कर बन्दी हुआ सो बात भी पाठकों को बतलाऊंगा, पर वही बात बढ़ते-बढ़ते पोथी बहुत मोटी होने लगी और अब इसे 'बन्दी-जीवन' न कह कर "बंदी विद्रोही की जीवन स्मृति" या "विप्लव-युग की स्मृति" कहना अधिक युक्तिसंगत होता। तो भी अब नाम बदलने में न जाने क्यों कुछ खटकता-सा है। इसके सिवाय उस विप्लव-युग की, आरम्भ की कहानी लिखे बिना ग्रंथ का नाम बदलना कुछ ठीक नहीं जँचता, इसलिए भविष्य में सारी कहानी लिख सकूँगा तो नया नाम दे कर इस असंगति को सुधारने का यत्न करूँगा।

दिल में सोचा था कि विप्लव की योजना छिन्न-भिन्न हो जाने के बाद हम लोगों को अपना जीवन जैसे काटना होता था अपने फ़रार जीवन की वह रहस्यपूर्ण कहानी इसी खण्ड में कहूँगा। इसी खण्ड में फिर लाहौर, बनारस, कलकत्ता और अंडमन की जेलों की कहानी भी विस्तृत

रूप से लिखने की इच्छा थी। सोचा था, इसी प्रसंग में भिन्न-भिन्न प्रदेश के लोगों के चरित्र की आलोचना करूँगा, और उसके साथ ही जेल की आबहवा में हमारे जीवन ने कैसी कितनी चोटें खाई थीं सो भी विशेष रूप से दिखाने की चेष्टा करूँगा। हमारे परिचित जगत् के पड़ोस में जिस एक और विचित्र जगत् की सृष्टि हुई है वह विश्वामित्र की सृष्टि से भी अधिक रहस्यमय है; इस जगत् के अन्दर जो एक और ही जगत् है, बचे रहने पर भी उस मृत्यु के परले पार का स्पष्ट और वेदना-पूर्ण आभास हमें मिला था। दिल में सोचा था यह बात इस खण्ड में कह सकूँगा; किन्तु अब देखता हूँ वैसा करने से पोथी बहुत बढ़ जायगी, इस लिए एक और खण्ड में यह सब कहानी कहने की इच्छा है।

श्रीरासबिहारी बोस



बुढ़ापे का असर दिखाई दे रहा है।   अभी ली गई तस्वीर।

बन्दी-जीवन

(द्वितीय भाग)

पहला परिच्छेद

पहली निष्फलता के बाद

पंजाब की विप्लव-योजना भले ही विफल हो गई किन्तु इतने से ही भारत में विप्लव की चेष्टा शान्त नहीं हुई। एक-एक करके विप्लवियों की सभी चेष्टायें व्यर्थ हुईं, एक-एक दो-दो करके कितने लोगों ने फाँसी के तख़्ते पर जान न्योछावर कर दी, क़ैदख़ानों में बन्दी हो कर उन के कितने साथी तिल-तिल करके प्राणों की बलि देने लगे और इस के कारण कितने ही परिवार बरबाद हो गये, कितनों ही की मातायें ये सब दृश्य अधिक न सह सकीं और पागल हो गईं, कितनों ही के पिताओं की सरकारी नौकरी चली जाने से उनका परिवार ग़रीबी की चक्की में पिस कर आश्रय की खोज में दर-दर फिरने लगा, समाज के अन्दर एक मर्मवेधी अन्तर्नाद घहरा उठा, किन्तु विप्लवियों का दिल फिर भी न दहला। क्यों ऐसा हुआ ?

भारत के इतिहास में प्रायः देखा गया है कि किसी अच्छे नेता की

अधीनता में भारतवासियों ने कितनी ही बार वीरता दिखा कर भारत का मुख उज्ज्वल किया है, कितनी बार असम्भव को सम्भव कर दिखाया और सारे संसार को चकित कर दिया है, किन्तु भारत के दुर्भाग्य से ज्यों ही यहाँ नेता का अभाव हुआ, त्यों ही फिर देश ने घोर निद्रा में मग्न हो कर ऐसा रूप धारण कर लिया कि फिर सहसा यह विश्वास नहीं होता कि यही भारत वह भारत है;—अतीत काल की कीर्ति मानो उस समय भ्रम सा दिखाई देने लगती है। इसी से हम देखते हैं कि रणजीतसिंह के बाद खालसा समाज में वैसे किसी और शक्तिशाली पुरुष का आविर्भाव न होने से सिक्ख जाति फिर सिर उठा ही नहीं सकी, राणा राजसिंह के बाद राजपूताना मर सा गया और महाराज छत्रसाल के बाद बुन्देलखण्ड ने म्लान मौनता धारण कर ली। ऐसा होने का कारण है। भारत की पूर्व सुकृति के बल से कभी-कभी यहाँ भाग्यशाली महापुरुषों का आविर्भाव हो जाता है तो भी प्रत्येक जीवन जिस प्रकार पुरुष-परम्परा में अपना प्रवाह बनाये रखता है उस प्रकार भारत की जीवन प्रतिष्ठा नहीं होती है इसी लिए * यहाँ एक महापुरुष के बाद दूसरे महापुरुष का आविर्भाव सम्भव नहीं हो पाता।

---

* मध्यकाल में आकर भारतीय राष्ट्र की जीवनधारा क्षीण हो जाती है, एक सतत प्रवाह के साथ नहीं बहती यह ठीक है। भारतीय राष्ट्र के समूचे जीवन के लिए यह नहीं कहा जा सकता। भारतीय इतिहास में Stagnation का यह काल शायद आज समाप्त हो रहा है। यह एक इतिहास का गहरा प्रश्न है जिस पर यहाँ पूरा विचार नहीं हो सकता।

किन्तु इस बार के इस नवीन युवकों के विप्लव आन्दोलन की विशेषता यह थी कि यह आन्दोलन किसी का मुँह नहीं देखता रहा। देश के गण्यमान्य लब्धप्रतिष्ठ नेता लोग जब एक रास्ते पर चल रहे थे, तब यह गुमनाम ग़रीब युवकों का सम्प्रदाय सैकड़ों विपदाओं में डगमगाये बिना अनेक बाधाओं और कष्टों में हिम्मत हारे बिना, देश के नेताओं के विरुद्ध ही नहीं, प्रत्युत उन के द्वारा निषिद्ध मार्ग में जाते हुए हिचकिचाता न था। महामति तिलक ने जेल से बाहर आ कर पुराने आदर्शों में भ्रम देखा और अपना मत बदल लिया, और अन्त में देश छोड़ कर जर्मनी जाने का संकल्प भी प्रकट किया। मनीषी विपिन-चन्द्र भी इँगलैंड से वापिस आ कर अपनी सारी शक्ति के प्रयोग से यह प्रचार करने लग गये कि पूर्ण स्वाधीनता का आदर्श भारत के लिए सुविधाजनक न होगा। ऋषि अरविन्द राजनैतिक क्षेत्र से छुट्टी ले कर भगवान् की लीला के उपयुक्त आधार बनने के लिए तपस्या करने लगे, और पूर्ण योग के आदर्श का, गृहस्थ और संन्यासी जीवन में सामञ्जस्य की कल्पना का, तथा यह जगत् मिथ्या नहीं, उसी सर्वशक्तिमान् का विलास ही है, लीलामय का लीलाक्षेत्र है, इत्यादि बातों का प्रचार करने लगे। भारत के राजनैतिक क्षेत्र में उस समय उल्लेख योग्य और कोई प्रभावशाली नेता नहीं रहे। इन्हीं कुछ नेताओं ने भारतवर्ष में पूर्ण स्वाधीनता के आदर्श का पहले प्रचार किया था। उसी के फलस्वरूप समाज में जो प्राणों की स्फूर्ति हुई, उसी नवजागरण की तरंग आज

भी भारत के हृदय को विचित्र प्रेरणा से स्पन्दित कर रही है। इन में से दो जनों ने तो पुराने आदर्श को छोड़ ही दिया; तीसरे ने मौन साध लिया। भारत के राजनैतिक क्षेत्र में कोई और पथ-प्रदर्शक न रहा। पर भारत के प्राण तो जाग चुके थे, उन में गति आ चुकी थी। जहाँ जीवन है वहाँ प्राण जो पथप्रदर्शक होते हैं। अपने अन्तरात्मा की ओर ही लक्ष्य रख कर जिन्हों ने जीवनपथ की यात्रा की थी, भारत के उन युवकों ने अपना मत नहीं बदला। वे देश के नेताओं से सलाह ले कर तो इस काम में नहीं उतरे थे, और न कभी इन नेताओं पर उन्हों ने भरोसा ही रक्खा था। नेताओं ने जिन आदर्शों का प्रचार किया था उन आदर्शों को पाने के लिए जो कुछ करना उचित था सो उन्हों ने कभी किया नहीं। भारत के लब्धप्रतिष्ठ विख्यात नेताओं में से दो-एक को छोड़ कर सब के विषय में कहा जा सकता है कि वे जिस बात को अपनी विवेचना से उचित समझते हैं उसे कहते नहीं हैं और अनेक बार जो कहते हैं सो करते नहीं हैं। अर्थात् जिस आदर्श का वे प्रचार करते हैं उसे कार्य में परिणत करने को जितना अग्रसर होना चाहिए उतना अग्रसर वे नहीं होते।

किन्तु भारत के उन नवयुवकों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। देश के अधिकांश नेता, हम स्वयं क्या कुछ कर सकते हैं या नहीं कर सकते यही देख कर फ़ैसला देते हैं कि देश के लिए क्या कार्य-क्रम उचित है, क्या अनुचित; किन्तु हमारे युवक जो कुछ

सिद्धान्त तय करते हैं उसमें क्या कर सकते हैं, क्या नहीं कर सकते, इस बात की चर्चा नहीं रहती! बल्कि हमें क्या करना उचित है यही उन के नज़दीक सबसे बड़ी बात होती है। युवकों के मन की अवस्था ऐसी थी या है इसी कारण उन में से ही विप्लवियों का आविर्भाव सम्भव हुआ है। और ठीक इसी कारण विप्लवी लोग जीवन-पथ में अग्रसर होते समय किसी बड़े नेता का मुँह ताकते न रहते थे और न सफलता-निष्फलता का हिसाब जाँचा करते थे। जिस चरित्र बल के रहने से जीवन की समस्त व्यर्थताओं के बीच मनुष्य आदर्शभ्रष्ट नहीं होता, सम्पद्-विपद् में, सफलता-निष्फलता में, जीवन की सब अवस्थाओं में जिस चरित्रबल के ज़ोर पर मनुष्य अपने आदर्श को लिये हुए डटा रहता है, विप्लवियों के बीच वैसे चरित्र वाले लोग जिस परिमाण में पाये जाते हैं, विप्लव दल के बाहर कुछ एक महाप्राण नेताओं को छोड़ कर वैसे बलिष्ठ-चरित्र के आदमी पाना दुर्लभ है। और विप्लव दल में वैसे चरित्र का अभाव न था इसी कारण विषम विपत्ति के दिनों में भी वे चञ्चल नहीं होते और पथ को दुर्गम देख कर वे लोग कभी पीछे नहीं हटते। इसी लिए पंजाब की विप्लव चेष्टा नष्ट हो जाने पर भी भारत में विप्लव का प्रयत्न उसी तरह चलता रहा।

अपने दल के विश्वासघात के कारण पंजाब में दो सौ आदमी पकड़े गये। पंजाब का विप्लवदल इस प्रकार प्रायः नष्ट हो गया। जो जीवन-मरण के खेल के साथी थे, अब वे प्रायः सभी सरकार के क़ैदी

हो गये। जीवन रहते भी मानो वे मर से गये। पग-पग पर प्रमाणित होने लगा कि यह आग के साथ खेलना है। आज जो हमारा साथी था कल वही पुलिस के पंजे में फँस जाता है। आज जो विश्वासी था कल वह विपत्ति में पड़कर कर्तव्याकर्तव्य भूल जाता है, जीवन का आदर्श क्षुद्र स्वार्थ के नीचे दब जाता है। विप्लवियों के जितने केन्द्र थे एक-एक कर के प्रायः सभी प्रकट हो गये। लाहौर के मुहल्ले-मुहल्ले में खाना-तलाशी और धर-पकड़ होने लगी। कहीं एक घर में बम मिला, कहीं तार काटने के औज़ार आदि। रासबिहारी जिस बैठक में रहते थे वह बैठक दो चार आदमियों के सिवाय किसी की जानी न थी इसी कारण तब भी वे निरापद रहे। पर हालात रोज़ बदल रहे थे। कब क्या होता कुछ कहा नहीं जाता था,—फिर नये सिरे से विप्लव की आयोजना होने लगी। पहले तीन सिक्खों को लाहौर के बाहर भेजने का सङ्कल्प हुआ। ताँगा करके ये तीन सिक्ख जा रहे थे। सड़क के एक मोड़ पर पुलिस ने ताँगा रोका, कारण—कि ये सिक्ख थे, सिक्ख देखते ही पुलिस ने ताँगा रोक कर कहा, एक बार उन्हें थाने जाना होगा और फिर उनका नाम-धाम आदि लिखा जाने पर वे अपनी जाने की जगह जा सकेंगे। उनके पास रिवाल्वरें थीं। इसके अलावा वे जानते थे कि पुलिस का पूर्णसन्तोषजनक उत्तर वे दे न सकेंगे। कहाँ से आते हैं, कहाँ जाते हैं यह बतलाना उनके लिए उस समय सम्भव न था; आख़िरकार थाने जाने का अर्थ ही था, अथाह समुद्र के तल में डूब

जाना। इस दशा में बग़ैर कुछ कहे-सुने पकड़े न जा कर एक बार उन्हों ने अन्तिम बार भाग्यपरीक्षा कर देखी! रिवाल्वर की गोली खा कर पुलिस के कई आदमी मरे और घायल हुए। तीन सिक्खों में से केवल एक को ही पकड़ा न जा सका, एक को एक रास्ता चलते मोटे मुस्टंडे मुसलमान ने धर गिराया, तीसरे को पुलिस ने ही पकड़ा। मुसलमान ने जिन को पकड़ा उनका नाम था जगतसिंह। सिक्खों में भी उन दैत्याकार जगतसिंह के मुक़ाबले का कोई न था। वे जैसे बलवान् और साहसी थे उन का शरीर भी ठीक वैसा ही दैत्य का-सा था। पुलिस के साथ यह कांड कर के वे पुलिस की आँख से बच कर निकल गये थे, किन्तु पूरी तरह बे खटके होने से पहले ही रास्ते के एक नलके से जल पी कर वे शान्ति से जब अपना मुंह पोंछ रहे थे, उस समय उनकी अपेक्षा भी बलवान् एक मुसलमान ने आ कर दोनों हाथों से उन के दोनों पैर इस तरह ज़ोर से दबा कर पकड़ लिए कि जगतसिंह फिर हिल न सके। जगतसिंह धक्का न सँभाल सके और गिर पड़े। मुक़दमे में जगतसिंह को फाँसी हुई। इस प्रकार रासबिहारी के कुछ विश्वस्त आदमी फिर पकड़े गये। यथासमय यह समाचार रासबिहारी के पास पहुँचा। उस समय सारे लाहौर शहर में उन्हें आश्रय देने वाला कोई नहीं था। उन का दल उस समय एक दम टूट गया था। उनके साथी-सहायकों में से उस समय तक कुछ गुमनाम सिक्ख युवक ही बचे थे। अपार समुद्र के मध्य में मानो वे उस समय पालविहीन डोंगी पर किसी तरह बह रहे

थे। जो पुलिस वाले मरे और घायल हुए वे भारतवासी थे, जो पकड़े गये, फाँसी पर चढ़े या जेल में सड़ने लगे वे भी भारतवासी थे और इन में आपस में कोई द्वेष, कोई विरोध न था !

इस समय के कुछ पहले ही मुसलमानों के बीच भी विप्लव का षड्यन्त्र आरम्भ होता है। आगे इस मुसलमान जाग्रति की विस्तृत आलोचना करनी होगी, इसलिए अब यहाँ इतना ही कहना यथेष्ट है कि तुर्की-इटालियन युद्ध के बाद से भारतीय मुसलमानों में एक नई चेतना का संचार होता है। किन्तु हमारे दल के साथ मुसलमान दल का संयोग होता है ठीक उस समय से, जिस समय की कहानी अब हम सुना रहे हैं। उन के साथ परामर्श करके रासबिहारी ने ठीक किया कि अब काबुल जा कर ही पहले आश्रय लेना होगा, और वहीं ठहर कर भारत की विप्लव-चेष्टा को नियन्त्रित करना होगा। उन्हों ने एक मौलवी से कलमा पढ़ना सीखा। ख़ालिस मुसलमान के वेष में ही काबुल जाना तय पाया। कुछ सिक्ख नेता भी रासबिहारी के साथ जाते। सब ठीक हो चुका था, और दो-एक दिन में ही यात्रा करनी होती, जब एक दिन दोपहर को रासबिहारी बोल उठे "नहीं भाई, काबुल जाना अब नहीं होता, मुझे जान पड़ता है कि इस समय काबुल की ओर जाने से विपत्ति आने की सम्भावना है, दूसरी ओर लाहौर में भी अब घड़ी भर और देर करने की इच्छा नहीं होती, दिल कहता है इस समय देर करने से ज़रूर आफ़त आयेगी।" रासबिहारी के दिल में जब जो आता था कभी उस

से उलटा न करते थे। इस लिए उसी वक्त ठीक कर डाला कि उसी दिन रात की गाड़ी से काशी रवाना होंगे। काशी के दो युवक इस समय उन के पास थे। एक का नाम था विनायकराव कपले, वे मराठा थे पर बहुत दिन काशी में रहे थे, दूसरे युवक का नाम हमारे समझने की सुविधा के लिए धरा जाता है गंगाराम। यह बहुत दिन तक फ़रार रहे। रासबिहारी और विनायकराव रात को आठ बजे की गाड़ी पर रवाना हुए। तय हुआ कि गंगाराम कुछ सिक्ख नेताओं को ले कर दो-एक दिन बाद काशी आयेंगे। करतारसिंह, हरनामसिंह और दूसरे कई सिक्ख नेताओं ने काबुल जाना ठीक किया।

रासबिहारी जिस मकान में रहते थे वही मकान सब की अपेक्षा बेखटके था, क्योंकि इसका पता बहुत लोगों को न था। जिन सब मकानों पर वे भिन्न-भिन्न लोगों से मिलते-जुलते थे, उन सब मकानों से इस समय कोई सम्बन्ध न रखा जाय, रासबिहारी का यह विशेष अनुरोध था। किन्तु यह होने पर भी गंगाराम रासबिहारी को स्टेशन पर पहुँचा कर लौटते समय एक बार उसी पुराने मकान को झाँक कर देख आने गये, उनकी इच्छा थी यदि खटका न देखा तो अपने बहुत से कपड़े लत्ते जो उस मकान में थे लेते आवेंगे। किन्तु पुलिस ने पहले से ही इन सब मकानों के चारों ओर अपने आदमी रख छोड़े थे। गंगाराम ने उस मकान के निकट जा कर झाँका ही था कि पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया।

पकड़े जाने के कुछ दिन के अन्दर ही गंगाराम ने पुलिस के नज़दीक़ सब बातें मान लीं। उन के इज़हार से पुलिस ने उस मकान का सूराग़ भी पा लिया जिस में रासबिहारी अन्तिम बार ठहरे थे। उस मकान की ख़ानातलाशी लेने पर पुलिस को उन के हाथ के लिखे दो-एक काग़ज़ भी मिले। इस से पहले जिन्हां ने इज़हार दिये थे उन से ही पुलिस को पता लग चुका था कि रासबिहारी फिर पंजाब आये थे और इसी लाहौर में थे। गंगाराम को पा कर उन्हों ने यह भी सुन लिया कि भयंकर धर-पकड़ के समय भी रासबिहारी लाहौर में ही थे। पुलीस यह भी जान गई कि रासबिहारी काशी से आये थे और फिर काशी वापिस चले गये हैं।

मौत के मुँह से इसी प्रकार रासबिहारी कई बार बचे थे। इस से बहुत दिन पहले की बात है, एक दफ़े और रासबिहारी इसी लाहौर में आये थे, उस समय तक वे देहरादून ही में नौकरी करते थे, कुछ दिन की छुट्टी ली थी और दिल्ली हो कर लाहौर की तरफ़ दल का काम-काज देखने आये थे। इधर दिल्ली में ख़ानातलाशी और गिरफ़्तारियाँ आरम्भ हो गईं। रासबिहारी इस बारे में कुछ भी न जानते थे। दिल्ली की ख़ानातलाशी के फलस्वरूप पुलिस को दीनानाथ नामी लाहौर के एक युवक का सन्धान मिला, एक आदमी के मकान पर रासबिहारी का ट्रंक और कपड़े-लत्ते आदि भी मिल गये। किन्तु लाहौर में रासबिहारी ठीक किस जगह हैं इसका सूराग़ पुलिस को न मिला। तो भी दीनानाथ का

ठिकाना पुलिस को मिल गया और लाहौर में उसे पकड़ लिया गया। तब भी रासबिहारी लाहौर में थे। दीनानाथ जिस दिन पकड़ा गया उस से अगले दिन शाम के समय डी. ए. वी. कालेज के बोर्डिंग के एक विद्यार्थी ने रासबिहारी के पास आ कर उन्हें दीनानाथ की गिरफ़्तारी की ख़बर दी। तब तक उन्हें यह ख़बर न मिली थी। सब की सलाह से तय पाया कि उसी रात रासबिहारी लाहौर छोड़ दें। रासबिहारी दिल्ली चले गये। इस तरह सलाह-मशविरा करते-करते रात अधिक हो जाने पर वह विद्यार्थी बोर्डिंग में वापिस न गया, जिस मकान पर रासबिहारी थे वह रात उस ने भी वहीं काट दी। सवेरे पुलिस ने वही मकान घेर लिया। तीन युवक गिरफ़्तार हुए पर रासबिहारी न पकड़े गये। दीनानाथ जिस दिन पकड़ा गया उस के अगले दिन रात के समय उस ने सब बातें खोल दीं। यदि एक दिन पहले वह मुख़बिर हो जाता तो रासबिहारी भी पकड़ लिये जाते।

इधर फिर दिल्ली आकर रासबिहारी अमीरचन्द के मकान की ओर जाने को ही थे कि राह में उन्हों ने थाने के नज़दीक अमीरचन्द के मकान वाले नौकर को कहीं जाते देखा। उन्हें ज़रा सन्देह सा हुआ, नौकर को बुला कर पूछा अमीरचन्द कहाँ है। नौकर मालिक के दोस्त को पहचान कर बड़ी हड़बड़ाहट से बोल उठा—"बाबू हमारे मकान पर न जायँ, मालिक को पुलिस पकड़ ले गई है, मैं उन के लिए थाने पर खाना ले जा रहा हूँ!" रासबिहारी के हाथ में उस समय जो रुपया

पैसा था उस से कलकत्ते तक का रेल का टिकट ख़रीदा जा सकता था। वे फिर से स्टेशन लौट कर एक दम सीधा चन्दननगर चले आये। उस दिन से रासबिहारी का अज्ञातवास आरम्भ होता है। तब से "thou art but a wandering voice" (तू एक उड़ती-फिरती आवाज़ है) की तरह यह पकड़ा, वह पकड़ा होने पर भी मानो उन का पता नहीं मिलता। इस प्रकार बार-बार विपत्ति से उद्धार पाकर भी वे फिर उसी विपत्ति में पड़ते रहे।

सरदार जगतसिंह



खों में भी उन दैत्याकार जगतसिंह के मुक़ाबले का कोई न था ।

सरदार ज्वालासिंह



"सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उन्हें तीस बेतों की सज़ा दी ।"

दूसरा परिच्छेद

काशी अञ्चल की कहानी (१)

काशी में बैठे-बैठे हम पंजाब की दुरवस्था की बात कुछ भी न जान पाये थे। तो भी कुछ दिन तक पंजाब का कोई संवाद न पाने पर हम कुछ चिन्तित होने लगे। रासबिहारी इस बार जब पहले पंजाब गये थे तब कह गये थे कि जल्द ही पंजाब से कुछ सिक्ख कार्यकर्त्ताओं को भेज देंगे, क्योंकि सिक्खों की पल्टन में यदि सिक्ख ही जा कर काम करें तो खूब फल हो। पंजाब से जब करतारसिंह आदि एक बार काशी आये थे तब उन की ज़बानी भी सुना था कि रासूदा* शीघ्र ही कुछ सिक्खों को इधर भेजना चाहते हैं। उस समय तक कानपुर, लखनऊ, फ़ैज़ाबाद (अयोध्या) आदि शहरों में हमारे आदमी नहीं गये थे। विप्लव ठीक कब आरम्भ होगा, यह संवाद एक आदमी हमारे पास ले आया था, और इसके बाद हमें पंजाब का और कोई संवाद नहीं मिला था। पंजाब से कुछ लोग सीधे फ़ैज़ाबाद ज़रूर आये थे, एवं कानपुर और लखनऊ में भिन्न-भिन्न समय पर पंजाब से ही लोग भेजे गये थे। इधर

* बड़े भाई को बंगला में दादा कहते हैं, उसका संक्षेप 'दा' भी हो जाता है।

हम लोग काशी की छावनी में आने-जाने लगे। २१ फ़रवरी सन् १६१५ रविवार को विप्लव शुरू होने की बात थी, हम शनिवार रात तक काशी की छावनी में गये थे। उधर पंजाब में विप्लव की तारीख़ २१ से हटा कर १६ कर दी गई थी उसका हमें कुछ भी पता न था। शनिवार रात को भी काशी की पल्टन के हवलदार और नायब हवलदार आदि ने हमें आश्वासन दिलाया था कि विप्लव आरम्भ हो जाने पर वे निश्चय ही विप्लव-दल का साथ देंगे।

किन्तु इस समय एक विचारों ने हमें एकदम चंचल कर दिया था। हम लोग सोचते थे कि हम अंग्रेज़ों के विरुद्ध विप्लव करने जा रहे हैं, और यदि सचमुच विप्लव आरम्भ हो गया तो अपने परिवारों को कहाँ किस दशा में रक्खा जायगा। विप्लव आरम्भ होने पर विप्लवी दल को दिल्ली ले जा कर दूसरे विप्लवी दल के साथ मिलाना होगा। उस अवस्था में यदि अंग्रेज़ी फ़ौज आ कर काशी पर दख़ल करे तो हमारे परिवारों की क्या अवस्था होगी! इस भावना ने हमें थोड़ा व्याकुल नहीं किया।

विप्लव सचमुच शुरु हो जाने पर पल्टन के सिपाहियों को तथा शहर के गुण्डों को संयत शासन के अधीन रखना कितना कठिन काम होगा यह भी हम भूल न गये थे, विप्लव के समय सैकड़ों हज़ारों परिवारों के मंगल-अमंगल का उत्तरदायित्व भी हमीं लोगों के सिर पर था, यह बात भी कभी हमारे ध्यान से नहीं हटी। किन्तु विप्लव जब करना ही था

तब ये समस्यायें चाहे कितनी कठिन क्यों न हों इन का समाधान भी हमें करना ही था।

और भी एक विचार ने हमें उस समय चिन्तित किया था। हम सोचते थे यदि दूसरे स्थानों में विप्लव आरम्भ हो जाय और हमारे यहाँ न हो तब हम लोगों की, जो पहले से ही पुलिस की विष-दृष्टि में पड़ चुके थे, क्या गति होगी? और दूसरे स्थानों में विप्लव आरम्भ हुआ कि नहीं, यह भी जानेंगे कैसे? इस अवस्था में अन्यान्य केन्द्रों की पक्की बात जाने बिना काशी की पल्टन को उभाड़ देना युक्ति-संगत होगा कि नहीं, यह हम सोच कर तय न कर पाये थे। हम जानते थे कि काशी में हमारे अपने दल की जो कुछ शक्ति थी उस से हम काशी की अंग्रेज़ छावनी पर हमला कर सकते थे। ऐसी अवस्था में देशी पल्टन को भी कोई एक पक्ष अवश्य लेना पड़ता, और हमारा विश्वास था कि देशी पल्टन हमारी तरफ़ ही योग देगी। इस तरह हम जानते थे कि इच्छा हो तो हम काशी में विप्लव का सूत्रपात कर सकते हैं। किन्तु और स्थानों की बात जाने बिना, विशेषतः पंजाब की बात जाने बिना कुछ करने की हिम्मत न होती थी। यदि अपने दल में काफ़ी तादाद में अस्त्र-शस्त्र रहते तो भी ऐसा करने की हिम्मत हो जाती। जो हो इन सब भावनाओं के बाद हम ने तय किया था कि रेलवे स्टेशन और तार-घर के पास जाँच-पड़ताल करके ही हमें इस बात का संशय दूर करना होगा कि पंजाब की ओर से तार आने में कुछ गोल-माल हुआ है कि नहीं। यदि तार न आया तो जान

लेंगे कि वहाँ कुछ गोलमाल शुरू हो गया है, विचार था कि विप्लव शुरू होने के कुछ पहले से ही सब तरफ़ तार काट दिये जायँगे। हमें स्टेशन पर ट्रेनों के आने-जाने में भी गोलमाल होने की आशा थी।

हमने स्थिर किया था कि इस प्रकार अन्य स्थानों की बात जान कर ही काशी की अंग्रेज़ी पल्टन पर आक्रमण करेंगे और रात के समय समर्थ अंग्रेज़ पुरुषों को जेल में डाल कर जेल के क़ैदियों को मुक्त कर देंगे। हमने समझा था कि जेल के क़ैदी इस तरह हमारी मदद से छूट जायेंगे तो उन में से कुछ तो ज़रूर हमारा साथ देंगे। तब तक हम जेल न गए थे इस लिए जेलों की अवस्था कुछ भी न जानते थे। अब जान पाया है कि यह आशा कैसी बड़ी दुराशा थी। जो हो, हमारा मतलब यह था कि आधी रात को मेगज़ीन और ख़ज़ाना हाथ में करके कुछ लोगों को एक-दम इलाहाबाद और दानापुर की ओर विप्लव की ख़बर के साथ भेज देते, और सवेरा होने पर आम खुली सभा बुला कर शहर के धनी लोगों से धन संग्रह करके शहर के युवकों से वालण्टियर होने का अनुरोध करते। उस समय काशी में हमारे बंगाली लोगों की कई खुली सभा-समितियाँ थीं। काशी में जितने भले लड़के थे सभी इन समितियों के सदस्य थे। इन समितियों के सदस्यों की संख्या कम से कम २५० थी। ये सभी लिखने-पढ़ने, स्वभाव और चरित्र एवं शारीरिक सामर्थ्य में काशी के बंगाली समाज के उज्ज्वल रत्न थे। इसी से काशी के शिक्षित लोगों को हमारी इन समितियों पर बड़ी सहानुभूति थी।

कालेजों के प्रोफ़ेसर, स्कूलों के मास्टर, बड़े-बड़े चिकित्सक, म्युनिसिपल कमिश्नर आदि अनेक बंगाली थे और इन सब के कोई न कोई सम्बन्धी हमारी समितियों के सदस्य थे। अनेक पर्वों और मेलों पर काशी में यह समिति के सदस्य लोग यात्रियों के आने-जाने और उनके स्नान आदि का ऐसा बन्दोबस्त करते थे कि सब लोग चकित हो जाते थे। इन्हीं सब समितियों से अनेक भले घरों की विपत्तिग्रस्त विधवाओं की अनेक प्रकार से सहायता की जाती थी, बीमारी आदि के समय यही समितियों के सदस्य लोगों के घरों पर जा कर सेवा शुश्रूषा करते थे। काशी के ग़रीब छात्रों के लिखने-पढ़ने के बन्दोबस्त के लिए यही समितियों के सदस्य लोग स्कूल आदि खोलते थे। इस तरह इन सब समितियों का प्रभाव काशी के बंगाली समाज पर कुछ कम न था। इसी लिए हमने तय किया था कि विप्लव के समय काशी में शान्ति और शृंखला रखने का भार इन्हीं समितियों के सदस्यों पर डाल दिया जायगा। इन समितियों के सदस्यों ने यद्यपि गुप्त रूप से हमारे इस विप्लव के आयोजन में साथ न दिया था, किन्तु तो भी इन में स्वदेश प्रेम या संगठन-शक्ति कुछ साधारण न थी। इस प्रकार प्रकट रूप से साहित्य और इतिहास की चर्चा करने के कारण तथा नित्य नियमित व्यायाम का अभ्यास करने से ये समितियों के सदस्य लोग शहर की शान्ति-रक्षा का भार उठाने के लिए अन्य सब से अधिक उपयुक्त थे। हम आशा करते थे कि विप्लव आरम्भ होने पर इन में से और शहर के हिन्दुस्तानी युवकों में से भी निश्चय ही बहुत-से

स्वेच्छासेवक मिलेंगे जो आग्रहपूर्वक हमारे विप्लव में साथ देंगे, और ऐसे भी बहुत से मिलेंगे जो स्थानीय काम के लिए काशी में ही रह जायेंगे। उस दिन कल्पना की आँखों से जब देखते थे कि काशी की गली-मुहल्लों, राह-घाटों में बंगाली स्वेच्छासेवक हाथ में गोली भरी पिस्तौल लिये और कमर में पैनी कृपाण लटकाये, दल बाँधे घूम रहे हैं तब गर्व से हमारी छाती दस हाथ फूल उठती थी। हमने तय किया था कि अपने सब विप्लवियों के परिवारों का काशी के ही किसी एक स्थान में इकट्ठा रहने का बन्दोबस्त कर दिया जायगा। हमारे इन स्वेच्छासेवकों का दल जिस प्रकार सारी काशी का अमन क़ायम रखता उसी प्रकार हमारे परिवारों का भी ध्यान रखता था।

हम यह भी जानते थे कि विप्लव आरम्भ होने के बाद सिपाही लोग ज्यों ही जान पायेंगे कि अस्त्र-शस्त्र जो कुछ है सो सब उन्हीं के पास है और उनकी सहायता बिना हम देश के साधारण लोग कुछ भी करने में असमर्थ हैं, तब स्वभावतः ही वे सिपाही स्वेच्छाचारी हो जायेंगे। किन्तु दूसरी तरफ़ हम ने यह भी सोच लिया था कि एक बार विप्लव में साथ देने के बाद जब तक कोई एक फ़ैसला न हो जायगा तब तक ये सिपाही लोग निश्चिन्त न रह सकेंगे, और फलतः अपने स्वार्थ के लिए ही उन्हें विप्लव सफल बनाने की ओर ध्यान देना होगा, और इस प्रकार बाधित हो कर उन्हें देश के शिक्षित और दृढ़चित्त विप्लव-नेताओं के अधीन रहना पसंद होगा। इस के अलावा मेगज़ीन हाथ में आते ही

जितना जल्द हो सकता, हम अपने आदमियों को हथियारबन्द कर डालते और तब हम लोग भी बिलकुल निहत्थे न रहते।

युद्ध-नीति से हम बिलकुल अनभिज्ञ थे, इस तरफ़ जैसी शिक्षा का प्रबन्ध करना उचित था वह हम ने किया नहीं था। कारण यह कि जर्मन-युद्ध इतनी जल्दी छिड़ जायगा और इतनी जल्दी खुले तौर से विप्लव शुरू करना होगा, यह हम पहले से समझ न सके थे। जो हो, रासबिहारी के पंजाब जाने पर मैंने और मेरे एक बन्धु विनायकराव कापले ने Encyclopaedia Britannica (अंग्रेज़ी विश्वकोष) ले कर Strategy और Warfare (समरनीति) विषयक लेख पढ़ना आरम्भ किया, और इससे पहले भी अनेक पत्रिकाओं आदि में इस विषय पर जो लेख निकलते थे वह भी हम बराबर पढ़ते रहते थे। इस प्रकार ये सब पोथियाँ पढ़ कर हम युद्ध-कुशल सेनापति न हो सकेंगे, यह हम जानते थे; Encyclopaedia में भी पढ़ा था कि generals are made in the field of battle (युद्ध-क्षेत्र में ही सेनानायक तैयार होते हैं) और इतिहास में इस के अनेक दृष्टान्त भी देखे थे। आजकल के ज़माने में भी ऐसे दृष्टान्तों का अभाव नहीं है, रूस के अभी उस दिन के विप्लव का इतिहास देखने से भी इसके प्रमाण मिलते हैं। अस्तु जो भी हो, हम लोगों ने जो किया था वही लिखे देता हूँ, उससे यदि हमारी कुछ नादानी का परिचय मिले तो लज्जित नहीं हूँ।

स्टेशन और तारघर का हालचाल देख आने के लिए २१ फ़रवरी

रविवार को मैं बाइक पर चढ़ कर काशी कैन्टूनमेंट के स्टेशन पर शाम के समय आया था। स्टेशन पर आ कर सुना कि उस समय तक ट्रेन अथवा टेलीग्राफ़ का कुछ भी गोलमाल नहीं हुआ। उसी स्टेशन पर उसी दिन शाम के वक़्त पल्टन के एक हवलदार के आने की बात थी। उसकी बाट जोहते-जोहते प्लेटफ़ार्म पर घूमते-फिरते दिल में आई कि अख़बार ख़रीद कर पढ़ूँ। पायोनियर ख़रीद कर देखा लाहौर में धर-पकड़ आरम्भ हो गई है और युरोपियन फ़ौज शहर में पिकेट कर रही है, अर्थात् लड़ाई के समय की तरह सावधान हो कर डेरे डाल कर पड़ी है। समझ गया, काम कुछ उलट-पुलट हो गया है। झट शहर में लौट आया। हमें अब सन्देह नहीं रहा कि इस बार की विप्लव-योजना भी छिन्न-भिन्न हो गई। किन्तु ठीक उसी दिन सिंगापुर में बलवा शुरू हो जाता है। सिंगापुर के साथ सीधे तौर पर हम लोगों का कोई सम्बन्ध न था, यह इतिहास एक और परिच्छेद में बतलाया जायगा। यदि सिंगापुर भारत के अन्दर की कोई जगह होती तो भारत की अवस्था अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लेती, इस में सन्देह नहीं। जिस समय सैकड़ों पल्टनें विदेश के युद्ध क्षेत्र में रोज़ ही भेजी जाती हों उस समय बलवा शुरू हो जाने पर सचमुच अधिकांश देशी पल्टनें हमारी ओर आ जातीं। हमारी यह आशा एक दम निर्मूल या भ्रमपूर्ण न थी। सभी पल्टनों से हमें आशा का संवाद मिला हो, यह बात भी

न थी। एक तरफ़ जहाँ एक सिक्ख पल्टन के सिपाहियों ने हमारे दल के एक तरुण युवक के मुँह से बलवा नज़दीक होने की ख़बर पा कर आग्रह और उत्साह के साथ उसी रात पल्टन के मुखियों को बुला कर गुप्त रूप से एक बैठक करके तय किया था कि पहले वे ज़रूर कुछ न करेंगे, पर सचमुच बलवा शुरू हो जाने पर वे निश्चय ही बलवे में साथ देंगे, वहाँ दूसरी तरफ़ एक और जगह की मुसलमान पल्टन ने यह उत्तर दिया था कि "तुम क्या हम को बिलकुल बच्चा समझते हो? अंग्रेज़ों के साथ युद्ध करना क्या लड़कों का खेल है? तुम्हारी तरफ़ कोई नवाब या राजा-महाराजा है? जब नहीं है तो तुम्हें रुपये से मदद कौन देगा? इसके अलावा बलवा शुरू होते ही वायरलेस टेलीग्राफ़ी (बे तार के तार) पर उसी समय भारत के चारों ओर ख़बर चली जायगी और थोड़े दिनों में चारों ओर की फ़ौज तुम्हारे ऊपर आ पड़ेगी। इस अवस्था में क्या तुम किसी तरह टिक सकोगे? तुम्हारे हाथ में अस्त्र-शस्त्र ही कितने हैं? तुम्हारी सामरिक शिक्षा-दीक्षा ही क्या है? ये बातें क्या सोच देखी हैं? हम लोग न बच्चे हैं न पागल, ऐसी बातें फिर हमारे नज़दीक कहने मत आना, हाँ, अगर सचमुच बलवा शुरू हो गया तो अवश्य हम लोग भी देशवासियों के विरुद्ध न चलेंगे, किन्तु देखना, होगा कुछ भी नहीं, इत्यादि।"

उस समय सिक्ख लोगों में जैसी उत्तेजना और उत्साह देखा गया था, वैसा उत्साह केवल पंजाबी मुसलमानों और पठानों में ही

कुछ हद तक देखा है। भारत की अनेक जातियों के साथ मिल-जुल कर समझ सका हूँ कि सिक्खों के समान मज़बूत, समर्थ और भावुक जाति भारत में कोई नहीं है। सिक्ख लोग जैसे सहज रूप से जितने थोड़े समय में उत्तेजित हो उठते हैं वैसी सहजता से भारत की और कोई जाति उत्तेजित नहीं हो उठती। रासबिहारी जब विप्लव का उद्योग व्यर्थ हो जाने पर पंजाब छोड़ कर फिर काशी की ओर लौट रहे थे तब ट्रेन में एक सिक्ख सैनिक के साथ उनकी बातचीत हुई। साधारण बातें होते-होते प्रसंगवश भारत की वर्तमान अवस्था की बात आई। इतने थोड़े समय की बातचीत से ही वह सिक्ख इतना उत्तेजित हो उठा कि रासबिहारी के साथियों को डर हुआ कि कहीं कुछ अनर्थ न हो जाय क्योंकि ट्रेन के कमरे में और भी कई तरह के लोग हैं, यह भूल कर उस सिक्ख ने उत्तेजित स्वर में कहना शुरू कर दिया था कि वह देश के लिए ज़रूर प्राण देगा। जो हो, बड़ी मुश्किल से उन्होंने उस यात्रा में छुटकारा पाया।

इस विषय में सब बंगालियों को दोष देते हैं। बंगाली भी बेशक बड़ी भावुक जाति है, पर भाव के उन्माद में सिक्ख लोग घड़ी भर में जैसे एक असम्भव काण्ड कर सकते हैं, वैसे भारत की और कोई जाति नहीं कर सकती। सिक्खों के कहने और करने के बीच अन्तर बहुत थोड़ा रहता है। इस लिए मैं समझता हूँ कि ऐसा कोई काम नहीं जिसे ये सिक्ख लोग उपयुक्त नेतृत्व में परिचालित होने पर न कर सकें।

सिक्ख समाज में आज केवल एक ही चीज़ का अभाव दीखता है और उस अभाव को पूरा करने के लिए सिक्ख समाज इस प्रकार जाग्रत हो गया है कि वह अभाव भी थोड़े ही दिनों में नहीं रहेगा। संसार की विचारधारा के साथ रहने के लिए जैसी शिक्षा चाहिए सिक्ख समाज में वैसी शिक्षा का बिलकुल अभाव है और इस अभाव को दूर करने के लिए छोटे-छोटे सिक्ख ज़मींदार भी जैसी आर्थिक सहायता करते हैं वैसा दृष्टान्त भारत की और किसी जाति में नहीं पाया जाता। तो भी सिक्खों में संकीर्णता बड़ी है, इस लिए सिक्ख समाज के लिए वे जो कुछ करते हैं उस का सौ में एक हिस्सा भी दूसरे समाजों के लिए नहीं कर सकते। सिक्ख सम्प्रदाय में से बहुतों का विश्वास है कि यदि वे उपयुक्त-शक्ति सामर्थ्य का उपार्जन कर लें तो फिर वे भारत में अपना साम्राज्य खड़ा कर सकते हैं। जो हो, वे फिर एक साम्राज्य खड़ा कर सकें या न कर सकें, भविष्य में यदि उन में उपयुक्त शिक्षा का प्रचार न होगा तो भारत के भाग्य में बहुत दुख लिखे हैं, इस में सन्देह नहीं।

ख़ैर, जाने दो इन बातों को, जो बात हम कह रहे थे उसे ही फिर कहें; कह रहे थे कि किस तरह पंजाब की दुरवस्था की ख़बर हम ने काशी में जान पाई थी। पायोनियर में यह कुसमाचार देख कर हमें बड़ी चोट लगी। हमें मालूम होने लगा मानों हम भारतवासियों का कोई संकल्प भी अन्त तक नहीं रहता। हम जो सोचेंगे, कुछ भी न होगा।

अंग्रेज़ लोग जो करने की बात कहेंगे उसी में कृतकार्य हो जायँगे। न जाने विधाता का यह कैसा विधान है।

भारतवासी का जीवन मानो केवल दूसरों के खेल की सामग्री है। उसको अपनी मानो कोई साध, कोई वासना ही नहीं है, या वह है भी तो मानो उसे पूर्ण करने की शक्ति उस में नहीं है। भारतवासी की सब चेष्टाओं का परिणाम मानो केवल व्यर्थता से पूर्ण है, भारत का इतिहास भी वैसे एक विराट व्यर्थता के कारण उदास स्वर में भरा है। भारत के इतिहास की तरह भारत की विप्लव चेष्टा का इतिहास भी एक सिरे से व्यर्थता का ही इतिहास है।

काशी अञ्चल की कहानी (२)

रेलवे स्टेशन से मुरझाया हुआ घर वापिस आया। घर में अनेक साथी मेरी प्रतीक्षा में बैठे थे। मुहल्ले-मुहल्ले में कुछ युवकों के दल भी हमारे आदेश की प्रतीक्षा में थे। उन्हें बलवे की बात मालूम न थी, पर इतना तो सब जानते थे कि शायद कोई भी भीषण काण्ड हो सकता है जिससे जान हथेली पर रख कर उन्हें उस कार्य में साथ देना होगा। साथियों ने सब सुना। बलवा रुक गया यह समझ लिया, तो भी दो-तीन दिन बड़ी उत्कण्ठा में कटे। जो हुआ सो एकदम आशा के विपरीत रहा हो ऐसा भी नहीं, कारण यह कि इस व्यर्थता की आशंका बड़े ज़ोर से पहले ही दिल में उठी थी, इस लिए पायोनियर की ख़बर सुन कर हम मानो मौन स्वर से बोल उठे—"यही तो कहते थे कि इतनी जल्दी क्या भारत का भाग्य पलट जायगा !"—दो तीन दिन में ही लाहौर में ताँगे की दुर्घटना का समाचार अख़बार में पढ़ा, हम में से बहुतों ने सोचा कहीं भाग जाने वाले व्यक्ति रासबिहारी ही न हों किसी-किसी ने कहा नहीं, रासबिहारी निश्चय ही वहाँ न थे कारण कि रासबिहारी

का भाग्य बड़ा उज्ज्वल है, उन का भाग्य ही उन की रक्षा करता है, इसी लिए विपत्तियों के मुँह में वे कभी नहीं पड़ सकते। इस के सिवाय अख़बार में तो साफ़ ही लिखा है कि ताँगे के यात्री सिक्ख थे। इस प्रकार रासबिहारी का भला-बुरा सोचते-सोचते हमारे दिन कटने लगे। क्यों कर और कितने दिन तक रासबिहारी बेखटके काशी आ पहुँचेंगे इसी भावना में हम अस्थिर हो कर दिन गिनने लगे। पंजाब की दुर्बलता के कारण काशी के दल को भी कहीं चोट न लगे इसी आशंका में हम कई आदमी घर पर बिलकुल न रहते थे, केवल बीच-बीच में घर आ कर ख़बर ले जाते थे कि पुलिस का उत्पात बढ़ रहा है या घट रहा है। उस समय भी घर पर बराबर पुलिस का पहरा था। उनकी आँखों में धूल डाल कर ही सब काम करना होता था। काशी में हम लोग इसी प्रकार दिन काटने लगे।

इधर पंजाब से करतारसिंह और हरनामसिंह काबुल की ओर रवाना हुए। राह में उन्हें न जाने क्या सूझी वे फिर सिपाहियों में बलवे का प्रचार करने के लिए छावनी में घुस पड़े। इस समय जगह-जगह सिपाहियों में धर-पकड़ आरम्भ हो गई थी। इस लिए स्वभावतः उनके बीच एक आतंक-सा छाया देख पड़ता था। इस अवस्था में सिपाहियों के बीच फिर प्रचार करने जाना करतारसिंह के लिए हरगिज़ उचित न था। फलतः सिपाहियों ने ही करतारसिंह और हरनामसिंह को पकड़वा दिया। उन्हें लाहौर लाया गया। ज़ंजीरों में जकड़े हुए करतारसिंह की

तरुण मुखश्री में वीरत्व की ऐसी महिमा झलकती थी कि उस मूर्त्ति को देख कर शत्रु-मित्र सभी एक साथ मुग्ध हो जाते थे। भाई परमानन्द ने अपनी "आप बीती" नामक पुस्तक में उस दृश्य का मर्मस्पर्शी भाषा में वर्णन किया है। ऊँचे दर्जे के अंग्रेज़ राज्याधिकारी भी वीर को उपयुक्त मर्यादा देने में प्रायः त्रुटि नहीं करते। पिछले विप्लव युग की कहानी देखते हुए साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ राज्याधिकारी विप्लवियों के वीरत्व और गुणों पर बहुधा मुग्ध हो उठा करते थे।

इधर एकाएक एक दिन सुना, रासूदा काशी आ गए। रासूदा से भेंट होने पर पंजाब की सब अवस्था मालूम हो गई। एक तो पंजाब का समाचार बंगाल में देना आवश्यक था, दूसरे मेरा काशी में ठहरना किसी तरह अभीष्ट न था, इस लिए दादा ने मुझ से एक दम काशी छोड़ देने को कहा। हमारा यह नियम था कि धर-पकड़ आरम्भ होने पर तुरन्त ही हम पहले का बन्दोबस्त जड़ से बदल देते थे, अर्थात् मनुष्य के मन का हम पूरी तरह कभी विश्वास न करते थे, क्योंकि हम जानते थे मनुष्य अपने मन को आप ही ठीक-ठीक नहीं पहचानता, इस लिए किसी के पकड़े जाने पर हम उसी क्षण सावधान हो जाते थे।

इसी समय काशी में पुलिस की निगरानी ऐसी कड़ी हो गई कि कोई भी नया बंगाली पुलिस की नज़र बचा कर आ ही न सकता था। बंगाली टोले के हर मुहल्ले में पुलिस हरएक घर जा कर पता लगाती थी

कि वहाँ कोई नया बंगाली तो नहीं आया। चन्दननगर और बंगाल में रासबिहारी को पहचानने वाले खुफ़िया पुलिस के जितने कारिन्दे थे सब को काशी के भिन्न-भिन्न स्टेशनों पर पहरे पर नियुक्त किया गया था। चौबीस घण्टा ऐसा ही पहरा रहता था। इस के अलावा काशी में जो लोग पुलिस की विष-दृष्टि में पड़ चुके थे उन के ऊपर भी जहाँ तक कड़ा पहरा रखना पुलिस के लिए सम्भव था, उस में पुलिस ज़रा भी कसर न छोड़ती थी। जो भी बंगाली काशी में आते उन सभी का नाम-धाम पुलिस लिख लेती, और फिर मकान पर जा कर पता लगाती कि उनकी बात सच है या नहीं। इस प्रकार पुलिस काशी में रासबिहारी की टोह लेती थी। और ऐसी भीषण अवस्था में भी रासबिहारी बेखटके काशी आ पहुँचे थे।

हम कुछ लोग पहले से ही सावधान थे। बहुत थोड़े समय ही घर पर टिकते थे। अधिक समय जिस जगह रहते थे उसे दल के कुछ आदमियों को छोड़ कर कोई न जानता न था। और रासूदा ही घर-घर जा कर रात को हमारा पता लेते थे। क्योंकि रासबिहारी को काशी में कोई बहुत पहचानता न था। काशी में हमारा खूब अच्छा दल था इसी लिए रासबिहारी ऐसी अवस्था में भी काशी में अनायास एक महीने से ऊपर रह सके थे। रासबिहारी को पकड़ने के लिए ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने कमर कस ली, और काशी के दल को बचाने के लिए रासबिहारी ने भी कमर कस ली। काशी के युवक लोग चुपचाप घरों

में बैठे और रासबिहारी ही घर-घर जा कर पूछ-ताछ करने लगे। किसे किस उपाय से काशी से बाहर भेज दें। प्रत्येक युवक के निकट जा कर रासबिहारी रोज़ वही बात ठीक करते। पहले मैं काशी छोड़ कर चला गया, फिर एक और मित्र ने भी काशी छोड़ दिया। इसी तरह धीरे-धीरे बहुत लोग काशी से खिसक कर बंगाल आ गये। जो युक्त प्रदेश के थे वे अपना शहर छोड़ कर दूसरे शहर में जा कर रहे, जैसे काशी वाले लखनऊ गये और लखनऊ वाले काशी आ गये।

मेरे बंगाल में खिसक आने के कुछ ही दिन बाद हमारे काशी वाले मकान की ख़ानातलाशी हुई, इस के थोड़े ही दिन बाद काशी के एक और युवक के घर की ख़ानातलाशी हुई, वे युवक उस समय काशी में ही थे, पर अपने घर पर न रहते थे। तड़के तीन बजे पुलिस ने घर घेर लिया, पर सवेरे व्यर्थ मनोरथ हो कर लौट गई! रासबिहारी के पास उस युवक ने सुना कि उन के घर की ख़ानातलाशी हुई है। कुछ दिन बाद विनायकराव कापले के घर की भी तलाशी हुई। विनायक उस समय गंगा स्नान करके लौट रहे थे। वे रहते थे भाड़े के मकान पर, किन्तु भोजन करते थे अपने ही मकान पर। मकान के नज़दीक आने पर विनायक ने सुना कि उन के मकान पर अनेक साहब लोग उन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह बात सुनते ही विनायक भी अन्तर्धान हो गए। इस प्रकार पुलिस किसी को भी न पा सकी। उस समय भी रासबिहारी काशी में ही रहे।

जिस समय सरकार की तरफ़ का गवाह विभूति स्पेशल ट्राइब्युनल की अदालत में इन सब बातों का विवरण करने लगा उस समय अदालत के जज भी आँखें फाड़ कर केवल विभूति के मुँह की ओर ताकते रहे और कुछ देर के लिए नोट लिखना भी भूल गये। सरकारी कौन्सल और हमारी ओर के वकील-बैरिस्टर आदि भी वैसे ही आग्रह और अचम्भे के साथ निर्वाक् हो कर रासबिहारी के अद्भुत कामों की कहानी सुनने लग गये; और बीच-बीच में कोई-कोई हमारी ओर मुँह करके धीरे से बोल उठते—"ओह, रासबिहारी की ऐसी हिम्मत है!" हम भी उस समय आनन्द और गर्व से गद्गद हो जाते थे। एक बार विभूति के मुँह की ओर देख कर समझने की चेष्टा की थी कि विभूति क्या सोचता है। ख़्याल आता है मन में उस समय इस बात का दुःख हुआ था कि विभूति क्यों हमारे गर्व और आनन्द में भाग नहीं लेता। इस समय ठीक याद नहीं आता कि विभूति भी सचमुच ऐसी मुख़बरी करने के बाद गर्व अनुभव करता था कि नहीं।

इस प्रकार काशी के अनेक युवक बंगाल में आ कर इकट्ठे हो गए। जिन लोगों का पंजाब से कोई सीधा सम्बन्ध न हुआ था, अर्थात् जिनका नाम-धाम पंजाब में कोई न जानता था, वे काशी में ही रहे। ऐसे युवकों की संख्या कम न थी, और इसी लिए ऐसे भीषण संकट के समय भी रास-बिहारी बेखटके काशी में रह सके थे। जिन युवकों को कोई विप्लवी रूप से नहीं जानता, जिन पर कोई सन्देह भी नहीं करता, ऐसे लोगों की

संख्या जिस विप्लव दल में जितनी अधिक हो उतना ही वह दल बलशाली और कार्यक्षम होता है।

काशी में हम लोग इस प्रकार सतर्क हो गये, पर पंजाब के नेताओं में से लगभग सभी एक-एक करके पकड़ लिये गये। डा० मथुरासिंह आदि केवल दो-तीन आदमी काबुल भाग जाने में सफल हुए। पिंगले तब भी पकड़े न गये थे। पंजाब की गोलमाल के बाद पिंगले भी काशी की तरफ़ ही आये थे। राह में वे भी करतारसिंह की तरह मेरठ छावनी में विप्लव फैलाने के लिए घुस पड़े। इस प्रकार मेरठ छावनी के एक मुसलमान दफ़ादार के साथ उन की बातचीत हुई। उस दफ़ादार ने पिंगले के नज़दीक बलवे की बात में ख़ूब उत्साह दिखाया, और पिंगले के साथ ही काशी आ गया। किन्तु रासबिहारी ने पिंगले को ऐसे काम में हाथ डालने के लिए ख़ास तौर से रोका। उन्होंने कहा अब सिपाहियों में जाने का काम नहीं, पर पिंगले निरुत्साह न हुए। अन्त में दादा को भी इस काम में स्वीकृति देनी पड़ी। पिंगले को सब से बड़े क़िस्म के दस बम दे कर भेजा गया। ये सब बम इतने बड़े थे कि इन में से एक भी जिस जगह गिरता उस जगह और कोई चिह्न तक न रहता। बारकों पर पड़ता तो अनेक बारकें एक ही साथ भूमिसात् हो जातीं। रौलट कमिटी की रिपोर्ट में इन्हीं बमों के सम्बन्ध में लिखा है—Sufficient to annihilate half a regiment अर्थात् आधी रेजिमेंट को समूल ध्वंस कर देने की शक्ति इन बमों में थी।—अन्त में रासबिहारी का

सन्देह ठीक ही निकला। उस दफ़ादार ने पिंगले को अपनी छावनी में ले जा कर बमों सहित पकड़ा दिया। मेरठ के प्रायः १०-११ सिपाहियों ने भी बाद में फाँसी के तख़्ते पर जीवन दिया।

जिस समय पिंगले मेरठ गये उसी समय दादा ने मुझ से बंगाल में कहला भेजा कि मैं सीधा दिल्ली जा कर वहाँ के सभी ऊँचे अंग्रेज़ कर्मचारियों के बंगले इत्यादि अच्छी तरह देख रक्खूँ। उसी समय दिल्ली में एक बड़ा कांड करने की आयोजना चल रही थी। मुझे दादा से सलाह किये बिना दिल्ली जाना ठीक न जँचा किन्तु पुलिस उस समय मुझे बुरी तरह खोजती थी। काशी जाना उस समय मेरे लिए बड़ा विपत्तिकर था। पर तो भी मैं काशी आया। मैं हमेशा से बेपरवाह तबीयत का था। मैंने कभी कल्पना भी न की थी कि मुझ पर भी कभी विपत्ति पड़ सकती है। अपनी इसी उच्छृङ्खल निर्भीकता के कारण ही अन्त में मैं पकड़ा गया। रासबिहारी निर्भीक थे पर उच्छृङ्खल नहीं।

रात को मुग़लसराय स्टेशन पर एक गुप्तचर के साथ मेरी भेंट हुई। किन्तु मेरी मौसी संग में थी इस लिए भागने का कोई चारा न था। बंगाल के एक युवक भी मेरे संग थे और उनके साथ कुछ बम भी थे। उन युवक को सावधान करके कह आया था कि मेरे साथ इकट्ठे एक गाड़ी में न चढ़ें और स्टेशन पर मेरे पास से कुछ दूरी पर ही रहें। जो हो, स्टेशन पर कुछ गोलमाल नहीं हुआ। मौसी से कह

रक्खा था कि मैं पकड़ा जाऊँ तो वे अमुक पता बता कर घर पहुँचा जायँ। काशी की ट्रेन प्लेटफ़ार्म पर आई तो वह गुप्तचर मेरे साथ एक ही डब्बे में चढ़ा, और न जाने क्यों, वह युवक भी मेरे ही डब्बे में आ चढ़े। उस गुप्तचर के साथ मेरा परिचय था इस लिए उस ने पूछा मेरे साथ की महिला कौन है। मुझे मौसी के साथ निश्चिन्त हो कर घर जाते देख कर मालूम हुआ कि गुप्तचर को कुछ आश्वासन मिला, और शायद उस ने सोचा कि बहुत दौड़धूप करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। इस के अलावा मालूम होता है उस का सम्बन्ध काशी के खुफ़िया विभाग के दारोगा यतीन्द्र मुखोपाध्याय के साथ था, इसलिए कोई गुप्त समाचार मिलने पर यतीन्द्र के सिवाय और किसी के नज़दीक वह प्रकट न करता। अन्दर का मामला ऐसा ही रहा होगा। इसी से मालूम होता है उस यात्रा में मैं बच सका। बहुत सवेरे घर आ पहुँचा, और घर पर बहुत थोड़ी देर टिक कर फिर बाहर निकल पड़ा। मेरा रंग-ढंग देख कर घर के सब लोग बड़े दुखी हुए। घर में सब से मैंने खुल्लमखुल्ला कह दिया कि किसी समय भी मैं पकड़ा जा सकता हूँ। मेरी ताई मेरे दोनों हाथ अपने दोनों हाथों में दबा कर बड़ी अनुनय के साथ कहने लगीं "तू क्यों डरता है शची, मैं कहती हूँ तुझे कुछ न होगा, तू घर पर ही रह।" किन्तु मैंने किसी की कोई बात न सुनी। उस समय मालूम हुआ रात खतम हो कर भोर हुआ चाहता है, चार या साढ़े चार बजे होंगे, मैं घर छोड़ कर रासबिहारी के ठिकाने पर आ ठहरा। फिर दूसरे दिन

सुबह के वक्त काशी से चला गया, उसी दिन सवेरे ही हमारे घर की ख़ानातलाशी हुई। हमारे घर के सामने ही एक गुप्तचर रहता था। सभी गुप्तचरों के मुँह से पुलिस ने मेरे घर आने की ख़बर पाई थी, पर घर की तलाशी लेने पर मुझे न पा कर वे सब अत्यन्त आश्चर्य करने लगे, यहाँ तक कि कई पुलिस वालों ने समझा मैं अभी भागा हूँ और सड़कों पर दौड़धूप भी की। पीछे कलकत्ते जा कर सुना कि पुलिस मुझे पकड़ने आई तो पुलिस के सामने ही कहते हैं, मैं छतों-छतों पर भागता हुआ ग़ायब हो गया, और वह सब देखती हुई भी कुछ न कर सकी।

राजपूताना के एक युवक के साथ मैं दिल्ली आ पहुँचा। अपने दल के ही एक युवक के डेरे पर अतिथि हुआ। दिल्ली में जो करना था सो किया। दिल्ली में ही पिंगले के साथ भेंट होने की बात थी। उस समय के होम मेम्बर सर रेजिनल्ड क्रैडक साहब तब दिल्ली में न थे, और एक दो और कारण थे, जिस से दिल्ली में कुछ किया नहीं गया।

दिल्ली में एक दिन बाइक पर घूमते घूमते साँझ हो गई थी। रास्ते में जगह-जगह लिखा था शाम को साढ़े छः बजे बत्ती जला लेना चाहिए। मैंने भी बाइक की बत्ती जला ली। मेरी बत्ती कुछ ख़राब थी। मैं बाइक पर तेज़ी से जाते हुए ज्यों ही रास्ते के मोड़ से घूमा त्यों ही देखा कि एक अंग्रेज़ घुड़सवार बड़े रोब से घोड़ा दौड़ाये चला आता है। मुझे देखते ही मेरी ओर हाथ बढ़ा कर उसने अंगुली से इशारा किया "ठहरो", मैं भी झट बाइक से नीचे उतर पड़ा। घुड़सवार

ने मेरे नज़दीक आ कर प्रश्न किया "बत्ती क्यों नहीं जलाई ?" तब देखा बाइक की बत्ती बुझ गई है। मैंने कहा "बत्ती अभी बुझ गई है हाथ लगा कर देखो अभी गरम है।" "बत्ती जलाओ" कह कर अंग्रेज़ घुड़सवार ने घोड़ा छोड़ दिया। मैं कुछ देर एक टक उस दर्पोन्मत्त अंग्रेज़ घुड़सवार की ओर देखता रह गया, और सोचने लगा "हाय रे ! कब हमारा भी वह दिन आयगा ? कब हम भी घोड़े पर चढ़ कर इस तरह माथा ऊँचा करके छाती फुलाये घूमेंगे।"

मेरठ में पिंगले कृतकार्य हों या न हों, दिल्ली में हमें कुछ काम करना था। इसी बीच समाचारपत्र में पढ़ा, मेरठ छावनी में पिंगले पकड़े गए। और ठीक इस समय मैं भी बुरी तरह बीमार पड़ गया। लाचार मुझे दिल्ली छोड़नी पड़ी। इस बीमारी में मैं १५ दिन तक एक साथ खाट पर पड़ा रहा। दूसरे सप्ताह न्यूमोनिया के लक्षण भी दिखाई दिये। उस समय जिन युवकों ने मेरी सेवा की थी उनके यत्न की बात मैं जीवन भर भूल नहीं सकता। मुझे उस समय उठने की भी ताक़त न थी। उस समय वही युवकगण मेरा मल-मूत्र तक साफ़ करते थे।

उधर पंजाब में लाहौर षड्यन्त्र के मामले की सुनवाई आरम्भ हो गई। लाहौर के मामले में शायद अनेक बातें सुनने लायक़ है। किन्तु मुझे इस विषय से कुछ विशेष नहीं कहना है।

इस प्रसंग में सब से पहले वह बात ध्यान में आती है कि इस मामले

में १०० विप्लवियों में से प्रायः १० व्यक्ति विप्लव धर्म को तिलांजलि दे व
अपने ही बन्धुओं को विपत्ति के मुँह में डालने से भी नहीं चूके। इ
सब मुकद्दमों के विषय में देश में अनेक आलोचनायें हुई हैं। इन्हीं व
देख कर ही बहुत लोगों की विप्लवियों के विषय में बड़ी हीन धारणा
गई है। पर एक बात याद रहे कि ईसा मसीह के शिष्यों में भी विश्वास
घातकता का दृष्टान्त पाया जाता है। मसीह जैसे महापुरुष के सम्प
में आने के बाद भी मनुष्य का अधःपतन हो जाता है। तब अ
स्थानों में ऐसा अधःपतन हो जाने में आश्चर्य ही क्या है!* हमा
विश्वास है कि विप्लव का काम जितना आगे बढ़ेगा विश्वास-घातक
भी उसी परिमाण में बढ़ेगी। इन सब षड्यन्त्र के मामलों में जैसे ए
तरफ़ विश्वासघात के दृष्टान्त पाये जाते हैं वैसे ही दूसरी तरफ़ वीर

---

*नागपुर के झण्डा सत्याग्रह में १७६४ स्वयंसेवकों में से दो सौ से अधिक माफ़ी मांग कर छूट गये थे। यह भी न भूलना होगा कि इन स्वयंसेवकों को सारा देश एक आवाज़ से प्रोत्साहन और साधुवाद दे रहा था, चारों तरफ़ धन्य-धन्य की गूँज सुन पड़ती थी। इनके, सगे-सम्बन्धी इनकी वीरता पर अभिमान करते थे, यहाँ तक कि बहुतों की स्त्रियाँ और बहनें "युद्ध क्षेत्र" में साथ उपस्थित थीं और जेल में साथ जाने तक को तैयार थीं। दूसरी तरफ़ यदि ये लोग सिर न झुकाते तो इन्हें औसतन केवल तीन मास की सादी या कड़ी क़ैद मिलती। षड्यन्त्र के अभियुक्तों के लिए प्रत्येक बात इससे ठीक उलटी थी। कहना पड़ता है भारत-वासियों के रीढ़ की हड्डी अभी तक बहुत कमज़ोर है और वे अपने पांवों पर खड़ा होना नहीं जानते। आध्यात्मिकता की कितनी ही डींगें हांका करें, घटनायें सिद्ध करती हैं कि चरित्रबल में वे संसार की सब स्वतन्त्र जातियों से पीछे हैं।

की भी अद्भुत कीर्ति हम देख पाते हैं। जो हो, लाहौर षड्यन्त्र के मामले की केवल दो बातें मैं पाठकों को देता हूँ।—अदालत में विचार के समय ज्वालासिंह नामी एक सिक्ख ने अभियुक्तों के शिनाख्त के विषय में एक उज्र पेश किया। केवल इसी अपराध पर जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उन्हें तीस बेतों की सज़ा दी। आश्चर्य की बात है कि पंजाब में कहीं भी इसका ज़रा भी प्रतिवाद नहीं हुआ। करतारसिंह ने मुक़दमे के समय अदालत में सब बातें स्वीकार कर लीं पर अंग्रेज़ जज ने पहले दिन उन की किसी बात को दर्ज नहीं किया। उन्होंने करतारसिंह को समझा कर कहा कि उन की स्वीकारोक्ति से उन का अपना केस (Case) बहुत ख़राब हो जायगा। इस पर भी करतारसिंह ने अपना मत न बदला उन्होंने सब घटनाओं का दायित्व स्वयं अपने ही सिर पर लिया। विवश हो कर जज ने कहा "करतारसिंह आज मैंने तुम्हारी कोई भी बात नहीं सुनी तुम्हें एक दिन का और समय देता हूँ। अच्छी तरह सोच-विचार कर कल जो कहना हो वह कहना।" दूसरे दिन फिर करतारसिंह ने सब दायित्व अपने ही सिर पर ले लिया। उन की शान्त वीरता पर सब मुग्ध हो गये। भारत के इतिहास में करतारसिंह का नाम सदा अमर रहेगा। भारत के विप्लव युग को भी करतारसिंह ने स्मरणीय कर दिया।

इस षड्यन्त्र के मामले में लाहौर डी० ए० वी० कालेज के भूतपूर्व अध्यापक भाई परमानन्द भी पकड़े गए, इन्हें भी अन्त में आजन्म कालेपानी का दण्ड मिला। लाहौर जेल में रहते समय वे

करतारसिंह के पास की कोठरी ही में बन्द थे। उस समय प्रायः सभी राजनैतिक अपराधी एक ही बारक में बन्द रहते थे। रात को वे सभी अपनी-अपनी कोठरी से एक दूसरे के साथ गप-शप करते थे। कहते हैं एक दिन भाई परमानन्द ने करतारसिंह से कहा – "देखो यदि मालूम होता कि अन्त में मुझे भी यही दुर्गति भोगनी होगी तो मैं भी तुम्हारे काम में पूरे उद्यम से योग देता!" भाई परमानन्द के एक ओर करतारसिंह थे और दूसरी ओर की कोठरी में एक और सिक्ख थे। वे अब भी बचे हुए है और इन्हीं से मैंने उक्त घटना अण्डमन में सुनी थी।

कुँवर प्रतापसिंह



—"किन्तु यदि मैं गुप्त बातें प्रकट कर दूँ तो और भी कितने लोगों की मातायें, ठीक मेरी माता के समान कष्ट पायेंगी, एक माँ के बदले में और कितनी माताओं को तब हाहाकार करना होगा।"

तीसरा परिच्छेद

दिल्ली में

(१) प्रताप की कहानी

राजपूताना के जिन युवक के साथ मैं दिल्ली गया उनका नाम था प्रतापसिंह। ये राजपूताना के चारण वंश से थे। चारण लोग राजपूतों में पूज्य माने जाते हैं। प्रताप के पिता का नाम था सरदार केशरीसिंह। वे उदयपुर के राणा के विशेष प्रिय थे, और अब मुझे ठीक याद नहीं, या तो प्रताप के पिता या उनके दादा उदयपुर के राणा के मन्त्री पद तक पहुँचे थे। इन की जागीर मेवाड़ के अन्तर्गत शाहपुरी राज्य में थी।

एक दिन था, जब यही राजपूताना वीरों का लीला-निकेतन कहा जाता था, एक दिन इसी राजपूताना में भीष्म के सामान महापुरुषों का भी आविर्भाव हुआ था, बंगाल की कल्पना दृष्टि में शायद आज भी राजपूताना उसी अतीत युग की शूरता, वीरता और उदारता की प्रतिमूर्ति-रूप ही प्रतीत होता है, किन्तु पौराणिक युग का वह गौरवमण्डित राजपूताना आज नहीं है। तथापि राजपूताना के

आज बिलकुल अधःपतित हो जाने पर भी उस अतीत युग के संस्कार आज भी प्रत्येक राजपूतानावासी के हृदय में अंकित हैं। प्रताप-परिवार की कहानी देख कर यह बात मेरे मन में स्वतः जाग उठती है।

यह परिवार राजपूताना के मुख्य-मान्य समृद्ध ज़मींदारों में गिना जाता था, किन्तु स्वदेश-प्रीति और तेजस्विता की ख़ातिर इन्हें अपना घर-बार बरबाद करना पड़ा।

सब से पहले दिल्ली षड्यन्त्र के मामले के सम्बन्ध में प्रताप और प्रताप के बहनोई पकड़े गए। किन्तु उन के विरुद्ध कोई विशेष प्रमाण न रहने से उस बार उन का छुटकारा हो गया। इस के कुछ ही दिन बाद कोटा में ही एक और राजनैतिक मामले में प्रताप के पिता सरदार केशरीसिंह जी को आजन्म कालेपानी का दण्ड हुआ, और प्रताप के एक सगे चचा के नाम भी वारण्ट निकला, सम्भवतः आज भी वे पकड़े नहीं गए। केशरीसिंह जी का स्वास्थ्य अच्छा न रहने से उन्हें अण्डमन नहीं जाना पड़ा, देश की जेलों में ही रहना पड़ा*।

इस मामले के फलस्वरूप सरदार केशरीसिंह जी की और उन के छोटे भाई की समूची सम्पत्ति तो ज़ब्त हुई ही, इस के अलावा उन के

* बाद में जुलाई सन् १९१९ में उन्हें छोड़ दिया गया था पर उनके भाई का वारन्ट अभी तक नहीं हटाया गया।

जो भाई राजनीति के पास फटकते भी न थे, उनकी भी सारी सम्पत्ति ज़ब्त हो गई। इस तरह वे समृद्ध-सम्पन्न जागीरदार की अवस्था से एक दम रास्ते के भिखारी हो गए। प्रताप की माता के दुःखों की उस समय सीमा न थी, आज एक सम्बन्धी के पास रहतीं तो कल दूसरे सम्बन्धी के घर जा कर अतिथि बनतीं, अन्त में अपने पिता के घर जा कर किसी तरह दिन काटती रहीं, प्रताप के मामा के घर की हालत भी विशेष अच्छी न थी। विधाता जब किसी के प्रति निर्दय होते हैं तब उन की निष्ठुरता के निकट संसार की सब निष्ठुरता फीकी पड़ जाती है। और वे जिन को वीर बना कर उठाते हैं, उनके वीरत्व के निकट भगवान् की निष्ठुरता भी हार मानने को बाध्य होती है। इसी से इतनी विपत्ति में पड़ कर भी प्रतापसिंह बराबर विप्लव दल में काम करते रहे। काम करने के भी जुदा-जुदा विभाग हैं, केवल कर्त्तव्य ज्ञान से काम करना एक बात है, और काम करके आनन्द पाना दूसरी बात; हमारा विचार है कि काम करके आनन्द पाया जाय यही हमारा कर्त्तव्य है; अर्थात् जैसा काम करके मन में किसी तरह का अनुताप-परिताप न हो, जैसा काम करने से मन में और प्राण में ग्लानि की कोई सूचना भी न हो और सब से बढ़ कर जैसा काम करने से मनुष्य साक्षात् रूप से आनन्द भी पाये, हमारा विचार है वैसा काम ही मनुष्य का कर्त्तव्य है. और जो करके मनुष्य आनन्द तो पाये ही नहीं, प्रत्युत उस से क्लेश का आभास हो वह काम करना मनुष्य को उचित नहीं। वैसे स्थान में

मानना होगा कि अनधिकार चर्चा की जा रही है, क्योंकि वैसे स्थान में आनन्द अथवा तृप्ति कुछ भी नहीं होती। अर्थात् लज्जा की ख़ातिर, लोक-निन्दा के भय से कर्त्तव्य-कार्य में योग देना एक बात है, और कर्त्तव्य-कार्य करके सचमुच आनन्द पाना दूसरी बात। प्रताप ने जो अपनी पारिवारिक अवस्था के भीषण संकट-काल में भी इस प्रकार विप्लव कार्य में योग दिया था उस से उन के दिल के किसी कोने में किसी तरह की ग्लानि अथवा संकोच तो था ही नहीं, वरन् विपत्ति की ऐसी कराल मूर्ति आँखों से देख कर भी वे पिता के अभिप्रेत प्रिय कार्य में फिर भी अपने को लगा सके, इस से उनका दिल आनन्द और गर्व से फूल उठता था। ऐसे बहुत सज्जन देखे गये हैं जो केवल कर्त्तव्य की ख़ातिर अथवा बन्धुत्व को निबाहने के लिए इस विप्लव मार्ग में योग देते थे, इसी से उनके कार्य में वैसा उत्साह न देखा जाता था इसी लिए वे अधिकांश समय मुरझाये से रहते थे। ऐसा भाव देख कर हम उन्हें अधिक दिन यह विडम्बना न भोगने देते, और शीघ्र ही निर्विवाद रूप से आनन्द भोगने का अवसर दे देते थे, जिससे वे छुटकारा पा कर शान्ति से दम ले सकें। किन्तु जब ऐसा नहीं किया गया है, जब-जब प्रकृति और प्रवृत्ति के विरुद्ध आचरण किया गया है, तब-तब प्रकृति देवी ने अपना पूरा बदला चुकाया है। प्रताप वैसे कर्त्तव्य की ख़ातिर ही उस कार्य में योग न देते थे। उन-जैसे युवक मैंने बहुत ही कम देखे हैं। प्रताप केवल स्वयं ही आनन्द में रहते हों सो नहीं, उन के संग में जो रहते थे

वे भी आनन्द पाते थे। तो भी बीच-बीच में प्रताप का मन माता-पिता के लिए अधीर न होता हो सो नहीं; हमारा तो विचार है कि जिस का मन ऐसी अवस्था में माता-पिता के लिए अधीर न होता हो उसका विश्वास करना उचित नहीं है। माया का एकदम अभाव होना एक बात है, और माया में लिप्त न होना दूसरी बात। मनुष्य की दृष्टि से मैं तो उन्हीं को श्रेष्ठ कहूँगा जिनके स्वभाव में माया की पूरी सत्ता है किन्तु जो माया में लिप्त नहीं होते। इसी से प्रताप को जब दुखी देखता तब मेरे प्राणों में बड़ी ही व्यथा होती। किन्तु कार्य-क्षेत्र में जब देखता प्रताप किसी से भी पीछे नहीं है तब फिर वैसे ही आनन्द भी प्रतीत होता।

भले-बुरे का द्वन्द्व भी प्रताप के अन्तःकरण में चरम अवस्था तक जा पहुँचा था। प्रताप के पकड़े जाने पर पुलिस बहुत दिन तक अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखा कर उन्हें सब गुप्त बातें प्रकट कर देने के लिए विशेष तंग करती। पुलिस प्रताप से कहती कि सब गुप्त बातें कह देने पर केवल प्रताप को ही नहीं वरन् उन के पिता को भी छोड़ दिया जायगा; यही नहीं उन के चाचा पर से भी मुक़द्दमा उठा लिया जायगा, उन की सब सम्पत्ति भी फिर लौटा दी जायगी, और इस सब के अलावा और भी कुछ पुरस्कार दिया जायगा। प्रताप की माता ने कितना कष्ट पाया है, प्रताप के भी दण्डित हो जाने से माता की अवस्था कैसी शोचनीय हो जायगी और इस आघात को वे कैसे सह सकेंगी, यह सब बातें पुलिस

अपनी स्वभाव-सिद्ध चतुराई के साथ बार-बार समझाती थी। पुलिस की ये सब बातें बिलकुल निर्मूल हों सो भी तो न था।

पहले-पहल तो वे पुलिस के साथ ज़्यादा देर ठीक तरह बात ही न करते थे। पीछे उन लोगों के साथ बात करना प्रताप को मानो कुछ-कुछ भला लगने लगा। एक दिन पुलिस वालों के साथ प्रताप की क़रीब तीन-चार घंटे बातचीत हुई। हम सब पास की निर्जन कोठरी में बैठे-बैठे दम थाम कर ज़मीन आसमान की बातें सोचने लगे, संदेह हुआ की अब की बार प्रताप फूट पड़ेगा! पीछे मुक़द्दमा आरम्भ होने पर जब हम सब को प्रायः दिन भर इकट्ठा रहने का सुयोग मिला तब मालूम हुआ कि सच ही प्रताप का मन बहुत विचलित हो गया था। यहाँ तक कि अन्त में एक दिन प्रताप ने पुलिस से कह दिया कि वे एक दिन और सब बातों पर विचार कर लें फिर कहना होगा तो कह देंगे। किन्तु अगले दिन जब पुलिस प्रताप से मिलने आई, प्रताप बोले "देखिये बहुत सोचा-विचारा अन्त में तय किया है कि कोई बात नहीं खोलूँगा अभी तक तो केवल मेरी ही माता कष्ट पा रही हैं, किन्तु यदि मैं सब गुप्त बातें प्रकट कर दूँ तो और भी कितने लोगों की मातायें ठीक मेरी माता के समान कष्ट पायेंगी, एक माँ के बदले और कितनी माताओं को तब हाहाकार करना होगा।"—मन के एक बार नीचे फिसल पड़ने पर उसे फिर अपनी जगह लौटा लाना कितना कठिन कार्य है, यह चिन्ताशील व्यक्ति ही समझ सकते हैं।

नहीं मालूम, आज भारत में कितने ऐसे पिता हैं, जो सरदार केशरी-सिंह जी की तरह सब जान-बूझ कर अपने को और अपनी सन्तान को इस प्रकार देश के कार्य में बलि दे सकेंगे। भारत का दुर्भाग्य है कि प्रताप-सा युवक आज इस जगत् में नहीं है। बरेली जेल में अंग्रेज़ों का दण्ड भोगते-भोगते उसका नश्वर शरीर उस दिव्य आत्मा का साथ न निबाह सका। इसी प्रताप के साथ मैं दिल्ली गया था और कई दिन तक इकट्ठे काम करने का अवसर पाया था। उस समय प्रताप की आयु लगभग २२ बरस की रही होगी। दिल्ली में, हम ने इस यात्रा में, कितना काम किया यह दूसरे परिच्छेद में लिखा जायगा।

---

(२) मुसलमान विप्लव दल की कहानी

पहले ही कह चुके हैं कि पंजाब का विप्लवायोजन विफल हो जाने के बाद मुसलमान विप्लव संघ के साथ हमारे दल का पहले-पहल परिचय हुआ। इस बार दिल्ली में रहते समय इस विप्लव दल के साथ हमें और भी घनिष्ट परिचय करने का अवकाश मिला।

इस मुसलमान विप्लव-दल के विषय में हमारे देशवासी एकदम कुछ भी नहीं जानते; कारण, कि इन का काम-काज़ प्रकट रूप से कुछ भी दिखाई नहीं दिया। गत तुर्की इटैलियन युद्ध के समय से ही भारत में इस विप्लव दल का सत्रपात हुआ है। उसी युद्ध के समय, शायद १९११ ई० में, भारत के मुसलमानों ने युद्ध में घायलों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए तुर्की में एक दल (Medicl Mission) भेजा। उस दल में अधिकतर मुसलमान लोग ही थे। पंजाब के "ज़मींदार" पत्र के सम्पादक श्रीयुत ज़फ़रअलीख़ाँ भी उस दल में थे।

इस दल ने तुर्की के सुलतान और अन्यान्य स्वदेश-प्रेमी मुसलमान सेनापतियों और राजकर्मचारियों के निकट विशेष सम्मान और आदर

पाया। मेरे एक मुसलमान बन्धु मुझ से कहते थे कि उसी आदर की अधिकता से उनका "माथा गरम" हो गया था। जिन्हें भारत में पग-पग पर लाञ्छन और अपमान ही सहना होता था। उन्हें जब तुर्की में राजा के अतिथि रूप में राजसम्मान के साथ समग्र तुर्की में भ्रमण करने का सुयोग मिला तब उनका "माथा गरम" होना ही चाहिए था। भारत की आबहवा में रह कर इतने दिन तक मुसलमान समाज में किसी चेतना के लक्षण दिखाई नहीं दिये, किन्तु जब इसी मुसलमान दल के लोग तुर्की की स्वाधीन आबहवा के स्पर्श में आये और जब उन्होंने देखा कि आज भी उनके स्वधर्मी लोगों ने युरोपवालों के देश में भी अपना आधिपत्य बराबर बना रक्खा है, और ऐसे एक स्वाधीन स्वधर्मावलम्बी राज्य के बाल-वृद्ध-वनिता तक, प्रत्येक व्यक्ति ने जब भारतीय मुसलमान दल को आदर के साथ अपनाया, तब उन की कितने ही समय की मोहनिद्रा मानो पल भर में उड़ गई, सहसा भारतीय मुसलमानों ने अपने को पहचान लिया। तुर्की इटैलियन युद्ध के फलस्वरूप भारतीय मुसलमान समाज में साधारण रूप से एक जागृति के लक्षण दिखाई दिये थे। काशी में देखा, धुने-जुलाहे और गाड़ीवान तक रोज़ तुर्की का संवाद जानने के लिए व्यस्त रहते थे। स्वधर्मी लोगों की समवेदना किसी मुसलमान को कष्ट के साथ अर्जन नहीं करनी पड़ती, यह तो उसका जन्मगत संस्कार होता है। इस साधारण जागृति के सिवाय, तुर्की में मेडिकल मिशन भेजने के बाद भारत के मुसलमानों में भी विप्लव का कार्य

आरम्भ हो जाता है। रौलट रिपोर्ट में लिखा है कि अंग्रेज़ों के तुर्की इटैलियन युद्ध के समय तुर्की को सहायता न देने के कारण भारतवर्ष के मुसलमानों में असंतोष का भाव फैल गया। पर हमारे विचार में यह बात ग़लत है। अंग्रेज़ तुर्की की सहायता करते तो भी मुसलमानों में यह जागरण अवश्यम्भावी था, क्योंकि असल बात तो यह थी कि बाहर के आघात से, बाहर के संस्पर्श में आने से एक अपने को भूली हुई जाति जाग गई ! अंग्रेज़ों के साथ उस जाति का क्या सम्बन्ध था, यह दूसरी बात है।

जो हो, इस मैडिकल मिशन के अनेक युवक तुर्की के संस्पर्श में आने से विप्लव धर्म में दीक्षित हो गये और भारत में आ कर उन्होंने मुसलमान सम्प्रदाय के बीच विप्लव का कार्य आरम्भ कर दिया। और तुर्की की गवर्नमेंट ने इन मुसलमानों में से किसी-किसी को अथवा इन के पसन्द के व्यक्तियों को भारतवर्ष में तुर्की राजदूत (Consul) नियुक्त कर दिया था। देश के जन साधारण को इन बातों का कुछ भी पता न मिल सका, किन्तु भारत-सरकार इन सब बातों के अलावा और भी बहुत कुछ जानती है।

किन्तु मुसलमान विप्लव दल पहले से ही बाहर की मुसलमान शक्तियों की ओर ही विशेष लक्ष्य रखता था। इन की सब आशा-प्रतीक्षा इसी लिए भारत के बाहर ही केन्द्रित थी। मुसलमान विप्लव दल के जिन सज्जन के साथ दिल्ली में मेरी बातचीत हुई थी उन के नज़दीक सुना था कि इस विप्लव दल ने इसी बीच काबुल से भारत पर आक्रमण करने

के लिए अनेक बार अनुरोध किया था। मैंने उस दिन उन के इस कार्य का घोर प्रतिवाद किया था उन्होंने मुझे यह समझाने का यत्न किया कि बाहर की किसी राजशक्ति की सहायता के बिना भारत की विप्लव चेष्टा सार्थक न होगी। मैंने भी उन्हें यह समझाने की चेष्टा की कि बाहर की सहायता चाहने का यह अर्थ न होना चाहिए कि बाहर की कोई राजशक्ति आ कर भारत में दख़ल कर ले। उन्होंने मुझे बड़े यत्न से यह समझाना चाहा कि काबुल वाले भारत में आ कर यहाँ स्थायी रूप से कभी न रहेंगे। हमें स्वाधीन करा कर ही चले जायेंगे। भारत के बहुत से मुसलमानों की ऐसी ही धारणा है।

किन्तु इन्हीं मुसलमान लोगों ने बीच-बीच में कई बार हमारी धन से सहायता की थी। उन के साथ बातचीत करके जहाँ तक समझ सका हूँ उस से जान पड़ता है कि मुसलमानों का यह विप्लव दल सारे देश में एक साथ ही कार्य करता था। उन का यह विप्लव दल पंजाब के सीमान्त प्रदेश से ले कर सुदूर ब्रह्म देश तक फैल गया था। किन्तु हमारे बंगाल के विप्लवदल में दलबन्दी का अन्त न था। पर सौभाग्य से बंगाल के बाहर उत्तर भारत में एकमात्र हमारा दल ही था, इसी से इधर दलबन्दी का कोई विशेष अवकाश न था।

हमारे दल से मुसलमान दल का यही भेद था कि हम लोग स्वाधीन भारत के जिस रूप की कल्पना करते थे, उस में हिन्दुओं के स्वावलम्बन की बात भले रही हो, हिन्दुओं की प्रधानता का कोई विचार

न था, एवं हमारी कार्य-प्रणाली में मुसलमानों को अलग रखने का ख़्याल दूर रहा, हम तो उन्हें दल में खींचने की ही चेष्टा करते थे। हमारे बुलाने पर मुसलमान यदि नहीं आते थे तो उस का कारण यह था कि मुसलमान लोग भारतवर्ष से हिन्दुओं की तरह प्रेम न करते थे। मुसलमानों के साथ मिलने-जुलने से हमारी यह धारणा हुई है कि हमारे देश के मुसलमान लोगों का तुर्की, मिश्र, अरब, फ़ारिस अथवा काबुल की ओर जितना खिंचाव है, भारत की ओर उतना नहीं है। वे तुर्की के गौरव में अपने को जितना गौरवान्वित मानते हैं, भारत-वासियों के, हिन्दुओं के गौरव में अपने को उतना गौरवान्वित नहीं मानते। मुसलमानों के मन के भाव बहुत कुछ ऐसे थे इसी कारण उन का विप्लव दल भी एक स्वतन्त्र रूप से गठित हुआ था। नवीन तुर्की के आदर्श से अनुप्राणित हो कर भारत के अनेक मुसलमान विप्लववादियों ने भी विश्व-इस्लामिक (Pan-Islamic) आदर्श को ग्रहण किया था, इसी लिए भारत के मुसलमान विप्लव दल को केवल भारतीय विप्लव दल न कह कर भारत का मुसलमान विप्लव दल कहना संगत है। हमारे इन दोनों विप्लव दलों के सिवाय दिल्ली में और भी एक दल था और सम्भवतः अब भी है। यह दल कोई गुप्त समिति न था। इस विषय की आलोचना आगे की गई है।

---

(३) दिल्ली के निष्कलंकी दल की कहानी

इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर अथवा दिल्ली हिन्दुओं के मन पर कैसा मोहजाल डाल देती है ! काल के चक्कर में पड़ कर कितने भिन्न-भिन्न राजवंश, कितनी देश-देशान्तर की जातियाँ आ कर दिल्ली के कितने नये-नये रूपों की सृष्टि कर गईं, कितनी जातियों के उत्थान और पतन के बीच दिल्ली का इतिहास गठित हुआ है, और दिल्ली के इतिहास की तरंग के साथ मानो भारत का इतिहास भी तरंगित होता रहा है। हिन्दुओं की गौरवमण्डित दिल्ली विदेशी विधर्म्मियों के पैरों तले आ कर आर्य-कीर्ति को लाञ्छित करने लगी, फिर इसी दिल्ली में ही युग-युग में भिन्न-भिन्न राजशक्तियों की परीक्षा चलने लगी, कितने संघर्ष, कितने राष्ट्र-विप्लव, कितने विरोधों के बीच दिल्ली का आधुनिक इतिहास गठित होता है। इसी से दिल्ली के इतिहास का अर्थ हो जाता है, भारत साम्राज्य का इतिहास। और इस क्षात्र-शक्ति के संघर्ष के इतिहास में जहाँ दिल्ली का इतिहास गठित होता है, वहाँ इसी दिल्ली में ही अनेक साधु सम्प्रदायों का भी आविर्भाव होता है। मुसलमान आधिपत्य

के समय जैसे दिल्ली के निकट सतनामी सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ था वैसे ही अंग्रेज़ों के इस आधिपत्य के समय इसी दिल्ली में निष्कलंकी दल का आविर्भाव हुआ है। सतनामी सम्प्रदाय के समान यह दल भी बहुत ही क्षुद्र है। आज प्रायः तीस साल से यह दल दिल्ली में है। इन तीस बरसों में ये लोग भारत की स्वाधीनता के लिए समस्त पृथ्वी पर सत्ययुग को लाने के लिए भगवान् के निकट नित्य प्रार्थना करते आये हैं। वे विश्वास करते हैं कि कलियुग समाप्त हो गया है और कल्किदेव के आविर्भाव का समय हो गया है। आजकल ये लोग प्रचार करते हैं कि कल्किदेव ने जन्म ले लिया है और शीघ्र ही प्रकट होंगे। किन्तु इस शीघ्र का अर्थ क्या है अर्थात् ठीक कितने दिन में कल्किदेव दिखाई देंगे, यह ये लोग नहीं कह सकते। ये लोग कहते हैं कि जब श्री भगवान् ने रामचन्द्र रूप में जन्म लिया था तब सारे भारत में केवल बारह ऋषि जानते थे कि श्रीराम भगवान् के ही अवतार हैं; और लोग यह बात जानते भी न थे और उस समय विश्वास भी न करते थे। इसी प्रकार वर्त्तमान काल में भी ऐसे लोग बहुत नहीं हैं जो यह जानते हों कि भगवान् का अवतार हुआ है। ये लोग कहते हैं कि वर्त्तमान युग में भारतवर्ष में अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया है, उन में से अनेक अपने असल रूप को नहीं जानते। जिस दिन उन महापुरुषों के सम्राट् अपने को प्रकाशित करेंगे, उसी दिन ये सब अपनी शक्ति-सामर्थ्य की बात और अपने पूर्व जन्म की बात जान सकेंगे। इन

महापुरुषों में से कई बड़े ही शक्तिशाली हैं, एवं इन में से कोई-कोई ऐसे भी हैं जो समझते हैं कि वे ही शायद भगवान् के अवतार हैं। ये लोग कहते हैं कि इस बार भगवान् ने ब्राह्मण के घर में जन्म लिया है, इसी से वे सभी के पूज्य होंगे। अन्यान्य युगों में क्षत्रिय आदि के घर जन्म लिया था इसी कारण उन्हें भगवान् का अवतार होते हुए भी ब्राह्मणों के चरणों में झुकना पड़ता था, इस बार वे ब्राह्मण के घर में जन्म ग्रहण कर सब से पूजा ग्रहण करेंगे, और ब्राह्मण के घर में जन्म लेने के कारण ही इस युग में उन का आचरण ऐसा होगा कि देश-विदेश में ऐसा कोई न होगा जो उन के किसी भी कार्य पर अँगुली उठा सके। अन्यान्य युगों के अवतार-पुरुषों का आचरण ऐसा नहीं हुआ कि उन के चरित्र में कोई दोष न दिखाया जा सके, किन्तु इस बार उन का आचरण ठीक भगवान् की ही तरह निष्कलंक होगा। ये लोग विश्वास करते हैं कि कल्किदेव खड्गधारी होने पर भी किसी के विरुद्ध अस्त्र धारण न करेंगे। ये लोग कहते हैं कि भारत की स्वाधीनता के लिए इस बार हिन्दुओं को अस्त्र ग्रहण न करने होंगे; कारण कि भारत के जो शत्रु हैं, जो पापी लोग हैं, जिनकी प्रकृति खल और असुर भावों से पूर्ण है, वे सभी आपस में ही मार-काट करके नष्ट हो जायेंगे, और उन में से जो बचे रहेंगे वे भी रोग, महामारी और दुर्भिक्ष में मर जायेंगे। इस तरह इस बार पृथ्वी पाप-भार से मुक्त हो जायगी और इस प्रकार जो सत् प्रकृति के पुरुष हैं, वही बच जायेंगे

और पृथ्वी पर सत्ययुग का आविर्भाव होगा। वे कहते हैं कि सत्ययुग का कार्य आरम्भ हो गया है एवं और कुछ बरसों के अन्दर ही संसार से पाप का लोप हो जायगा।

इन की साधना की पद्धति होती थी, लगातार कल्किदेव का नाम जपना और उन के निकट भारत के और जगत् के मगल के लिए सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से नित्य प्रार्थना करना। ये कहते हैं भगवान् ही जब जगत् के एकमात्र कर्त्ता और नियन्ता हैं, तब सब प्रकार से उन्हीं के शरणागत हो कर उन्हें स्मरण करना और उन की ध्यान-धारणा करना ही हमारा एकमात्र कार्य है। संसार के सब कार्य करते रहने पर भी भारत की स्वाधीनता और भारत के सर्वांगीण मंगल के लिए एक प्रार्थना करने के सिवाय और कुछ भी ये लोग नहीं करते—और ये लोग कोई संन्यासी भी नहीं होते। इन के प्रायः सभी सिद्धान्त विप्लवियों के समान हैं, और भारत के विप्लव प्रयासी दल के लोगों को ये खूब अच्छा भी मानते थे, किन्तु कार्य-क्षेत्र में और सब प्रकार से साधारण संसारियों की तरह होने पर भी भारत की स्वाधीनता के लिए ये लोग एक प्रार्थना के सिवाय और कुछ भी करना नहीं चाहते या नहीं करते। कह नहीं सकता इन लोगों में सचमुच कोई मानसिक या चरित्रगत दुर्बलता है कि नहीं, क्योंकि इन लोगों के साथ अच्छी तरह मिलने-जुलने का सुयोग अथवा अवसर मुझे नहीं मिला। इस बार दिल्ली में आने से पहले ही

यद्यपि इस सम्प्रदाय की बात मैं सुन चुका था, तो भी इन में से किसी के भी साथ अब तक साक्षात् रूप से बातचीत और परिचय न हुआ था। इस बार दिल्ली में रहते समय इनके दल के नायक के साथ केवल दो-तीन दिन बात करने का सुयोग पाया। इन्हें सब लोग बालमुकन्द उर्फ़ हनुमान जी कहते थे। सुना था कि ये बीच-बीच में दिल्ली की आम सड़क पर पुकार उठते थे कि भगवान् कल्किदेव का आविर्भाव हो गया है, पापी लोग सावधान हो जाओ, इस समय सब लोग भगवान् के नाम का जप करो और पूर्णरूप से सरल अन्तःकरण के साथ उन के शरणागत हो जाओ, इस बार पापियों का और कोई निस्तार नहीं है, समय रहते सब सावधान हो जाओ, और पिछले पाप कर्मों के लिए अनुतप्त हो कर भगवान् कल्किदेव के शरणागत हो जाओ, इत्यादि-इत्यादि।

प्रताप के साथ इस बार दिल्ली में रहते समय मैंने इन्हीं बालमुकुन्द जी के साथ बातचीत की थी। ये बिलकुल सीधे-सादे ग़रीब ब्राह्मण थे, लिखना-पढ़ना कुछ भी नहीं जानते थे। अपने हाथ से ही रसोई करते और अपने जूठे बर्तन आदि स्वयं साफ़ करते। इस दल के सभी लोग इन पर यथेष्ट श्रद्धा-भक्ति रखते थे। इन के इस दल में मध्यम दर्जे के शिक्षित श्रेणी के लोग कोई बहुत न थे। प्रायः ये सभी अंग्रेज़ी से अनभिज्ञ और गोहत्या करने वालों के परम शत्रु थे।

इन के नायक बालमुकुन्द जी अब देह त्याग कर चुके हैं, और

आज मालूम होता है ५–६ वर्ष से मध्यम श्रेणी के अंग्रेज़ी पढ़े लोग भी इन के दल में आ कर योग देने लगे हैं।

यह अवतार के आविर्भाव की बात दिल्ली के निष्कलंकियों के दल के सिवाय और भी अनेक लोगों से भी सुनने में आई है। मेरे जेल से लौटने के बाद गोरखपुर में मेरे मामा जी के पास एक साधु आये थे, वे भी निष्कलंकी दल की ही तरह अनेक बातें कह गये थे। पिछले युद्ध के समय अमेरिका जब जर्मनी के विरुद्ध अंग्रेज़ों के पक्ष में नहीं मिला था, उस समय यही साधु आ कर मामा जी से और मेरे मँझले भाई से अमेरिका के अंग्रेज़ों से मिल जाने और अन्त में अंग्रेज़ों के पक्ष के जीतने की भविष्यवाणी कर गये थे; अन्डमन में रहते समय ही यह सब बात मुझे लिख भेजी गई थी; वह पत्र अब भी मेरे पास है। इस के सिवाय कलकत्ता हाईकोर्ट के भूतपूर्व वकील "ब्रह्मवीदा ऋषि ओ ब्रह्मविद्या" नामक ग्रन्थ के लेखक श्रद्धेय श्रीयुत ताराकिशोर शर्मा महाशय भी इस अवतार की बात का बहुत दिन से प्रचार करते आते हैं। युगान्तर के प्रसिद्ध सम्पादक उपेन बाबू से भी कई साधुओं ने इस प्रकार की अनेक बातें कही थीं। इन सब की बातें पूरी तरह एक न होने पर भी इन सब की बातों का सरांश प्रायः एक ही था।

गुरु और चेला

लाला अमीरचन्द



श्रीअवधबिहारी



एहसान नाख़ुदा का उठाये मेरी बला,
किश्ती ख़ुदा पे छोड़ दूँ लंगर को तोड़ दूँ !

(४) दिल्ली के विप्लव दल का पुनर्गठन

दिल्ली के विप्लव दल के दो मुख्य कार्यकर्ता श्रीयुत अवधविहारी और श्रीयुत अमीरचन्द उत्तर भारत के अनेक विप्लवियों की अपेक्षा बहुत अंशों में श्रेष्ठ थे। इन की प्रकृति में धर्म-भाव अत्यन्त प्रबल था। धर्म और कर्म का इस प्रकार एकत्र समावेश भारत के बहुत थोड़े विप्लवियों में देखने को मिला है। अवधविहारी की आयु जब केवल २३ या २४ वर्ष की थी, तब से अथवा उस के भी कुछ दिन पहले से ही वे इस विप्लव दल में योग देते थे। इस आयु में ही उन की प्रकृति में जैसा धर्म-भाव देखा गया था उस से कहना पड़ता है कि ऐसा संस्कार ले कर ही उन्होंने जन्म लिया था। एक उर्दू कविता उन्हें बहुत प्रिय थी, जिसे वे प्रायः दोहराया करते थे। वह कविता इतनी सुन्दर है कि उसे यहाँ उद्धृत किये देता हूँ, कविता यह है:—

"एहसान नाख़ुदा * का उठाये मेरी बला,
किश्ती ख़ुदा पै छोड़ दूँ लंगर को तोड़ दूँ।"

सचमुच ठीक इसी प्रकार अगाध विश्वास हृदय में रखते हुए

---

* नाखुदा = मल्लाह।

अवधविहारी ने अपनी जीवन-नौका आरपार हीन महासागर के बीच ही छोड़ दी थी।

अवधविहारी की अपेक्षा अमीरचन्द उम्र में बीस वर्ष बड़े थे। अमीरचन्द शिक्षक का कार्य करते थे, और बचपन से ही अवध-विहारी अमीरचन्द के पास, पहले छात्र रूप में और फिर शिष्य रूप में तथा मित्र रूप में, उन्हीं की संगत में पले और बड़े हुए थे। ये अमीरचन्द स्वामी रामतीर्थ के विशेष भक्त और शिष्य थे। और इन के साथ स्वामीजी का साक्षात् परिचय भी था। स्वामी जी की वक्तृता आदि का इन्होंने ही सब से पहले प्रचार आरम्भ किया था।

इन्हीं के प्रभाव से दिल्ली के अन्यान्य कार्यकर्त्ताओं में भी ऐसा ही धर्म-भाव अंकित हो गया था। इन में से श्रीयुत लछमीनारायण और श्रीयुत गणेशीलाल खास्ता का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अमीरचन्द और अवधविहारी के साथ मेरी वैसी घनिष्ठता न हुई थी; कारण कि वे पहले ही पकड़े गये थे। किन्तु इस बार प्रताप के साथ दिल्ली आ कर लछमीनारायण और खास्ता जी के साथ ख़ूब घनिष्ट रूप से मिलने का अवसर पाया।

दिल्ली के निष्कलंकियों की बात अवधविहारी आदि सभी जानते थे; किन्तु इन में से लछमीनारायण निष्कलंकियों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे. मैं जिस समय की कहानी कह रहा हूँ उस समय लछमीनारायण वैद्यक पढ़ते थे, और निष्कलंकियों की तरह अंग्रेज़ी के नज़दीक न फटकते थे।

दिल्ली के विप्लव दल का पुनर्गठन

अवधबिहारी और अमीरचन्द के पकड़े जाने पर दिल्ली के विप्लव दल का कार्यभार लछमीनारायण और गणेशीलाल पर आ पड़ा। गणेशीलाल फ़ारसी के बड़े पण्डित थे और बड़ी अच्छी कविता लिख सकते थे। लाला हरदयाल खास्ता जी की बहुत सी कवितायें अपनी "ग़दर" पत्रिका में उद्धृत कर देते थे; और हमारे मुक़द्दमे में केवल इस क़िस्म की जातीय भावपूर्ण कविता लिखने के अपराध में ही उन्हें सात बरस की कड़ी क़ैद की सज़ा हुई थी। खास्ता जी भी अंग्रेज़ी लिखना-पढ़ना कुछ न जानते थे, किन्तु फ़ारसी भाषा के सहारे जितना ज्ञान पाया जा सकता है वह सब उन्होंने पाया था। खास्ता जी का दर्शनशास्त्र से विशेष प्रेम था, उनकी प्रकृति में ज्ञान की प्रवृत्ति ही विशेष पुष्ट हुई थी।

मैं इस बार प्रताप के साथ दिल्ली आने के पहले और भी कई बार दिल्ली आया था, और तब से ही देखता था कि अवधबिहारी आदि की गिरफ़्तारी के बाद से दिल्ली में हमारा काम प्रायः कुछ भी आगे नहीं बढ़ रहा था। लछमी और खास्ता जी का उत्साह धीरे-धीरे मन्द सा होता जाता था। दिल्ली षड्यन्त्र के मामले की सुनाई ख़तम होने के बाद पहले-पहल लछमी और सब की अपेक्षा अधिक उत्साही थे, और अनेक विपत्तियों के बीच में भी हमारे साथ मिलते-जुलते थे। पहले-पहल वे विपत्ति की परवाह न करके दल के अनेक कार्य करते, किन्तु थोड़े ही दिन में उनका उत्साह भग्न हो गया। धीरे-धीरे अवस्था

ऐसी हो गई कि लछमी अब लोक-संग्रह की वैसी चेष्टा न करते और आधी इच्छा से जिन सब लोगों का उन्होंने संग्रह किया था वे भी वैसे उत्साही न होते। किन्तु इस समय लछमीनारायण के मन में एक और भाव क्रमशः बढ़ने लगा। दिल्ली के निष्कलङ्कियों के साथ घनिष्टता होने के कारण उन में यह परिवर्त्तन हुआ। उन के मत में कोई परिवर्त्तन न होने पर भी क्रमशः वे कार्य में निश्चेष्ट होते जाते, और अधिकांश समय भगवान् का नाम जपने और उनकी आराधना में ही गँवा देते। इस तरह धीरे-धीरे वे हमारे काम की अवहेलना करने लगे। वे स्वयं जिस प्रकार निष्कलङ्कियों के प्रति अगाध विश्वास रखते थे उसी प्रकार जिन कुछ कार्यकर्त्ताओं का संग्रह किया था उन्हें भी इसी निष्कलङ्की दल के विश्वासी भक्त बना डालने लगे। फलतः हमारे कार्य में उनका वैसा उत्साह न रहा। अन्त में हम ने सुना कि लछमीनारायण खाली प्रर्थना करने के सिवाय हाथ से या क़लम से और कुछ भी न करेंगे, और उनके अनुयायी भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करेंगे।

इन सब कारणों से अनेक प्रकार से विप्लव की चेष्टा विफल होने के बाद हम और प्रतापसिंह नये सिरे से कार्य चलाने के लिए दिल्ली आये। हमारे दिल्ली आने का यह भी एक कारण था। क्रीकक साहब के दिल्ली में न रहने से हमें अपना एक विशेष कार्य अन्त में स्थगित ही रखना पड़ा, किन्तु दिल्ली की विप्लव-समिति के पुनर्गठन में हम पूर्ण उद्यम से लग गये।

दिल्ली में हमारे लिए मकान किराये पर ठीक कर देना, दिल्ली के पुराने कार्यकर्त्ताओं के साथ आलाप-परिचय करा देना आदि साधारण कार्यों को छोड़ लछमीनारायण और कुछ न करते थे। अर्थात् दिल्ली का सब कार्य भार हमारे हाथों सौंप कर उन्होंने विप्लव के कार्य से छुट्टी पाने का प्रबन्ध कर लिया।

हम लोग दिल्ली में एक मकान भाड़े पर ले कर प्रायः पन्द्रह दिन रहे। दिल्ली से राजपूताना बहुत दूर नहीं है, मैं दिल्ली में ही रहा और प्रताप को दो बार जयपुर भेजा। हमारी इच्छा थी राजपूताना के कुछ युवकों को दिल्ली में ला कर दिल्ली के विप्लव केन्द्र को सुगठित कर डालें। प्रताप राजपूताना में कार्य करते और मैं दिल्ली के कर्मियों के साथ मिलता-जुलता और उन में से अपने दिल के मुताबिक़ आदमी छाँटता। इस प्रकार दिल्ली में कुछ दिन काम करने के फलस्वरूप खास्ता जी के मन में बुझी हुई आग फिर प्रज्ज्वलित हो उठी। उन्हों ने अपना पुराना उद्यम फिर पा लिया। हम ने देखा लछमीनारायण के बदले खास्ता जी ही दिल्ली का कार्यभार ग्रहण कर सकेंगे। उन्हीं की चेष्टा से इस बार हमारे साथ दिल्ली के मुसलमान विप्लव दल का घनिष्ट परिचय हुआ। मुसलमानों के साथ ठीक हुआ कि वे हमें पिस्तौल, रिवाल्वर और गोली जुटा देंगे और हम उन्हें बम जुटा देंगे। इस के सिवाय जिस प्रकार हम दोनों दल शीघ्र ही और भी अधिक सम्मिलित रूप से कार्य कर सकें उस का भी [illegible] आयोजन किया जाने लगा। इतने दिन बाद मानो

मालूम होने लगा कि दिल्ली में फिर से कार्य का स्रोत बहने लगा। हमारे पास से बम लेने के लिए हो अथवा यथार्थ में सहायता करने के लिए हो, दिल्ली में मुसलमान दल ने हमारी इस बार बड़ी आर्थिक सहायता की।

इस प्रकार जिस समय दिल्ली का कार्य क्रमशः आगे बढ़ने लगा मैं भी ठीक उसी समय खूब बीमार पड़ गया। लाचार प्रताप को संग ले कर मैं बंगाल चला आया, मेरे नाम उस समय वारन्ट निकल आया था इस लिए युक्त प्रदेश में न रह कर बंगाल आना ही ठीक समझा।

विप्लव के कार्य में लछमीनारायण भले ही निश्चेष्ट हो गये, किन्तु दूसरी ओर प्रायः हर समय उन्हें कल्कि और काली का नाम जपते देखा जाता। वे सचमुच बड़े भक्त थे इस में कोई सन्देह नहीं, किन्तु इस प्रकार कर्म में निश्चेष्ट होना हमें अच्छा नहीं लगता। लछमीनारायण जी की कर्म में यह निश्चेष्टता उन्हें निष्कलंकियों से ही मिली थी। लछमीनारायण और उनके कुछ बन्धुओं के सिवाय हम सब लोग निष्कलंकियों की बातों पर अविश्वास भी नहीं करते और उनकी सब बातों पर विश्वास भी नहीं करते। भगवान् का स्मरण और उन के श्री चरणों में आत्मोत्सर्ग कर के जीवन को भगवान् के भाव से पूर्ण कर डालने की आन्तरिक चेष्टा हम में से बहुतों ने की, किन्तु निष्कलंकियों की बातों में हमें खूब आनन्द भले ही आता था। उन की सब बातों में हम पूर्ण रूप से आस्था नहीं कर सके।

एक बात हम सभी ने सुनी है कि धर्म-धर्म करते-करते हमारा देश

एक दम उजड़ गया है। बड़े ही दुःख के साथ एक बात स्वीकार करनी पड़ती है कि १०-१२ बरस के विप्लव-कार्य के तजुरबे में हम ने देखा है कि जो लोग धर्म-धर्म बहुत पुकारा करते थे उन में १०० में से ९९ आदमी बाद को लोकहित के कार्य में निरुत्साह हो जाते थे और अन्त में इने-गिने, दो-एक आदमियों के सिवाय और सभी प्रायः तामसिक वृत्ति के हो जाते थे। धर्म और आन्तरिकता की पूरी परख होती है त्याग में; और इस त्याग की कसौटी पर कसे जाने पर अधिकांश धार्म्मिक कहलाने वाले लोग तामसिक और स्वार्थपरायण प्रमाणित हुए हैं। हमारा विश्वास है कि आर्य-सभ्यता में दो बड़े ऊँचे सिद्धांत हैं—अधिकारभेद और गुरुवाद, इन दोनों की ओर एकदम ध्यान न दे कर जब हम धर्म-कर्म करते जाने को कहते हैं तब स्वधर्म छोड़ कर परधर्म करने लगते हैं, और इसी कारण हमारी दुर्गति होती है। इसी से सात्विकता की ओट में हम प्रायः तामसिकता को आश्रय देते हैं, और धर्म के नाम पर केवल अधर्माचरण करने लगते हैं।

लछमीनारायण में सचमुच तेज था, उन्होंने सचमुच आन्तरिक भाव से भगवान् का स्मरण करना आरम्भ किया था, किन्तु सांसारिकता और आध्यात्मिकता के बीच वे सामञ्जस्य नहीं रख सके। और लछमी की देखादेखी उनके बन्धुओं ने भी कर्म को त्याग कर केवल भक्ति को ग्रहण कर लिया था, किन्तु विपत्ति के दिन, हम सब के पकड़े जाने पर इन्हीं लछमी के बन्धुओं ने जिन्होंने इतने दिन तक भगवान् का नाम लेना

ही जीवन का एकमात्र कर्त्तव्य बना रक्खा था; पुलिस के पंजे में पड़ कर अपने को बचाने के लिए हम सब के विरुद्ध गवाही दी थी, और तो और लछमीनारायण के विरुद्ध गवाही देने से भी वे नहीं चूके।

विपत्ति में पड़ने से पहले तक लछमी जी उन के विषय में कहते थे कि इस समय वे लोग बिलकुल भक्ति-साधना में लिप्त हैं, इसी से उन के द्वारा मैं विप्लव का कोई काम-काज कराना नहीं चाहता, इस के सिवाय इस समय भगवान् को स्मरण करना ही एकमात्र काम है, अपने हाथ से हमें कुछ करना नहीं है, श्रीकल्किभगवान् प्रकट होंगे, और पूर्णतः उन्हीं की शरणागत होना इस समय हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। लछमीनारायणजी बहुत दिनों से बहुत विपत्तियों के बीच विप्लव-समिति में काम-काज करते आते थे, इसी से दूसरे साथियों की अपेक्षा उन की मानसिक शक्ति बहुत अधिक थी। हमारा विचार है इसी कारण विपत्ति में पड़ कर भी वे अपने को भूले नहीं, किन्तु उन के दिखाये कर्म्मविमुखता के आदर्श में अनेक लोग उलटे रास्ते पड़ गये, इसी लिए असल परीक्षा के समय ये लोग मनुष्योचित व्यवहार न कर सके।

अवधबिहारी भी बड़े ही भक्त थे, और वे भी निष्कलङ्कियों के निकट आया-आया करते थे, किन्तु ऐसा होते हुए भी उन्होंने अपना धर्म नहीं त्याग दिया था, इसी से सांसारिकता और परमार्थिकता के बीच वे सामञ्जस्य रख सके। वर्तमान भारतीय समाज में सांसारिकता और आध्यात्मिकता के इसी सामञ्जस्य का विशेष अभाव है।



जापानी वेश में श्रीरासबिहारी बोस

चौथा परिच्छेद

बंगाल में

(१) रासबिहारी का भारत त्याग

बारी का बुखार लेकर प्रताप के साथ बंगाल में मैं अपने केन्द्र में आ उपस्थित हुआ। बंगाल में हमारी विप्लव-समिति का केन्द्र था कलकत्ता के निकट एक गाँव। अनेक कारणों से उस गाँव का नाम अब भी नहीं लिखा जा सकता। इसी स्थान में मुझे पन्द्रह दिन तक खाट पर पड़े रहना पड़ा। और इसी स्थान के युवकों ने उस समय बड़े यत्न से मेरी सेवा-शुश्रूषा की। प्रताप मुझे बंगाल में छोड़ कर राजपूताना चले गये। बात थी कि मैं स्वस्थ होने पर राजपूताना जाऊँगा और इस बार बड़े यत्न के साथ राजपूताना में विप्लव के केन्द्र स्थापति करने होंगे। परन्तु जब उन के साथ मेरी फिर भेंट हुई, तब हम दोनों ही जेल में थे।

मैं जब इस प्रकार बीमार हो कर खाट पर पड़ा था तब पूर्व बंगाल के एक नेता श्रीयुत नगेन्द्रनाथदत्त उर्फ़ गिरिजा बाबू प्रायः मेरे पास आया करते थे। उन के साथ परामर्श कर के हम ने ठीक किया कि

रासूदा को अब किसी प्रकार भारतवर्ष में नहीं रहने देना होगा। बहुत हो चुकी, भगवान् अनेक प्रकार से उन को अब तक बचाते आये हैं। अब और अधिक उन्हें भारतवर्ष में बेखटके रहना सहज नहीं है। हमारा दल चोट के बाद चोट खा कर फैलने का सुयोग नहीं पाता। जिस समय हमारा दल उन्नति की ओर अग्रसर होने लगता है, ठीक उसी समय एक ऐसी बड़ी चोट उस पर आ लगती है कि उस चोट के बाद सम्हलने में फिर कुछ दिन लग जाते हैं। पहले दिल्ली षड्यन्त्र मामले की चोट सम्हालते-सम्हालते हमारा एक वर्ष चला गया, उस चोट के बाद सम्हल कर फिर जब गवर्नमेंट पर और ज़ोर की चोट करने लायक़ शक्ति सञ्चय किया ठीक उसी समय फिर लाहौर षड्यन्त्र का मामला हो गया। इस चोट ने हमें एकदम पंगु कर किया। इस चोट से हमारा पंजाब और युक्तप्रदेश का दल भग्नप्राय हो गया। बंगाल में भिन्न-भिन्न दलों को चोट के बाद चोट सहनी पड़ी। इस अवस्था में रासबिहारी को भारतवर्ष में रखना हमें कुछ भी युक्तसंगत न जान पड़ा, क्योंकि दल का अच्छा ज़ोर न रहने पर अंग्रेज़ों की विधि व्यवस्था के विरुद्ध टिका रहना किसी प्रकार सम्भव न था। रासूदा को जो हम लोग इतने दिन तक बचाये रख सके तो केवल अपने आर्गनिजेशन (संगठन) के सुप्रबन्ध के ज़ोर पर। दिल्ली षड्यन्त्र के मामले के बाद रासूदा को पकड़ा देने के लिए साढ़े सात हज़ार रुपया इनाम की घोषणा की गई थी, उस के एक वर्ष बाद लाहौर षड्यन्त्र के मामले में रासबिहारी का

कीर्त्ति-कलाप प्रकाशित हुआ। इसके फलस्वरूप पंजाब गवर्नमेंट ने उन्हें पकड़ा देने के लिए और ढाई हज़ार रुपया देने की घोषणा की, अर्थात् उन्हें पकड़ा देने के लिए इस समय सब मिला कर दस हज़ार रुपया इनाम था; और बनारस षड्यन्त्र के मामले के बाद युक्तप्रदेश की गवर्नमेंट ने ढाई हज़ार इनाम और बढ़ा दिया। तब उन्हें पकड़ा देने का कुल पुरस्कार साढ़े बारह हज़ार रुपये तक जा पहुँचा। इन सब कारणों से हम ने ठीक किया कि रासूदा को इस बार भारत के बाहर भेजना ही होगा।

इतने दिन तक हम लोग एक बात की ओर बड़े उदासीन थे। हम इतने दिन तक समझते थे कि विप्लव वस्तुतः शुरू होने में काफ़ी देर है, इसी से हम ने इतने दिन तक उचित परिमाण में विदेश से अस्त्र-शस्त्र लाने का कोई विशेष आयोजन नहीं किया था। किन्तु इस बार देश की अवस्था देख कर हम ने समझ लिया कि उपयुक्त परिमाण में अस्त्र-शस्त्र रहें तो विप्लव आरम्भ करने में अधिक देर न होगी। इसी से इस बार रासूदा को विदेश भेज कर नये सिरे से विप्लव का आयोजन करना तय हुआ। रासूदा भी देश छोड़ने से पहले कह गये थे "इस बार भारत के प्रत्येक युवक और युवती को सशस्त्र करना होगा, उसके बाद देखेंगे अंग्रेज़ किस तरह भारत पर शासन करते हैं।"

रासूदा पहले विदेश जाने के प्रस्ताव से वैसे सहमत न होते थे, वे

कुछ दिन और प्रतीक्षा करना चाहते थे; किन्तु हमारे अनुरोध को वे अन्त में न टाल सके। किस प्रकार, कब और कहाँ जाना होगा ये सब बातें रासूदा से भेंट होने के बाद ठीक की गईं। बात थी कि रासूदा विदेश जाते ही सब से पहले यथेष्ट परिमाण में मोज़र पिस्तौलें और उनकी गोलियाँ भेज देंगे, और बाद में विप्लव के लिए उपयुक्त परिमाण में अस्त्र-शस्त्र भेजने का बन्दोबस्त कर चुकते ही देश चले आवेंगे। किस प्रकार अस्त्र-शस्त्र देश में आ कर पहुँचेंगे और विप्लव आरम्भ करने की विस्तृत आयोजना कैसी होनी चाहिए, यह सब विदेश के उपयुक्त और जानकार समरकुशल व्यक्तियों के साथ परामर्श करके ठीक करने का विचार था।

काशी से रासूदा विनायक कापले को संग लेकर पहले नदिया आये और फिर विदेश जाने के पहले तक कलकत्ता के पास ही कहीं रहे। विदेश जाने के चार दिन पहले वे कलकत्ते की ही एक कलकलपूर्ण बस्ती में आ कर रहे और एक दिन, दिन-दोपहर हम और गिरिजा बाबू जा कर उन्हें जहाज़ पर चढ़ा आये। यह अप्रैल सन् १६१५ की बात है। मैं और रासूदा एक गाड़ी में और गिरिजा बाबू दूसरी गाड़ी में जहाज़ तक गये। रासूदा का मुझ से बड़ा ही प्यार था। रास्ते में रासूदा मुझे अपने अत्यन्त निकट खींचकर मेरे कन्धे पर हाथ रख कर बड़े स्नेह के साथ कहने लगे, "भाई देश छोड़ते मुझे कितना कष्ट होता है यह तुम से नहीं कह सकता, देखो, खूब सावधान हो कर सुनो। भाई, देश के

काम को ठीक ढंग पर ला कर तुम भी मेरे पास चले आना।" उनके साथ मेरी यही अन्तिम बात हुई थी।

इस प्रकार तय था कि देश में आर्गनिजेशन (संगठन) ठीक ढंग पर हो जाने के बाद मैं भी विदेश जा कर उनका साथ दूँगा, कारण कि मेरे नाम भी वारन्ट निकल गया था और देश में रहने से उस समय पकड़े जाने की बड़ी सम्भावना थी। वारन्ट निकलना तो दूर की बात है, यदि केवल पुलिस की सन्देह दृष्टि में पड़ जायँ तो भी काम करने में बड़ी असुविधा हो जाती है। देश में भिन्न-भिन्न स्थानों के विप्लवकारियों को परस्पर मिला देने वाला कोई और रहता तो मैं भी रासूदा के साथ ही विदेश चला जाता, किन्तु वैसे किसी और व्यक्ति के न रहने से कार्य की ख़ातिर उस विपत्ति के बीच भी मुझे देश में ही रहना पड़ा। काशी छोड़ने से पहले रासूदा ने मेरी माता जी से यह प्रतिज्ञा ले ली थी कि मेरे विदेश जाने के ख़र्च की बाबत एक हज़ार रुपया दे देंगी। मैं ऐसे विप्लवकार्य में लिप्त हूँ, यह बात मेरी माता जी बहुत दिन से जानती थीं, और इन सब बातों में उन की यथेष्ट सहानुभूति भी थी। मेरे बहुत जन्मों के सुकर्मों का फल था कि बंगाली के घर में मुझे ऐसी माँ मिली थी।

रासूदा के विदेश जाने का रहस्यपूर्ण विस्तृत इतिहास लिखने का समय अभी नहीं आया; केवल इतना ही यहाँ कहे देता हूँ कि बाहर से यह काम कितना ही रहस्यपूर्ण क्यों न दिखाई दे, असल में यह बड़ा सहज और सरल था। इस प्रकार जाने के लिए केवल साहस और भगवान्

का भरोसा करने के सिवाय और किसी चीज़ की आवश्यकता न थी। जिस समय रासबिहारी विदेश गये उस समय युरोप की लड़ाई भयंकर रूप से चल रही था, और उस समय विदेश जाना या विदेश से देश में आना कुछ कम कठिन बात न थी। इसके सिवाय रासबिहारी की सी दशा के आदमी के लिए एक जगह से दूसरी जगह घूमते फिरना कुछ कम खतरनाक न था। अवश्य ही उस समय उन के पास हर वक्त गोली भरी पिस्तौल रहती थी और हम में से भी कोई न कोई हर वक्त उन के नज़दीक मौजूद रहता था। इसी से उन्हें जीते जी पकड़ लेना एक हिम्मत का ही काम था। किन्तु सब से अधिक वे भगवान् की अनुग्रह पर ही निर्भर रहते थे। जब वे अन्तिम बार कलकत्ते आए तब उन्होंने रिवाल्वर संग लेने में भी अनिच्छा प्रकट की थी। रासबिहारी का बदन दोहरा था, इसी से मेरी धारणा थी कि वे दौड़ बिलकुल नहीं सकते। एक दिन मैंने उन से पूछा "यदि पुलिस पकड़ने आवे तो आप दौड़ने की चेष्टा करेंगे कि नहीं?" उसके उत्तर में हँसते-हँसते बोले कि वे बिलकुल दौड़ न सकेंगे, उस अवस्था में शान्ति से आत्म-समर्पण कर देंगे। ऐसे ही और एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था कि उन की आयु जब तक पूरी न होगी वे पकड़े न जायेंगे। आयु के ऊपर तो और किसी का हाथ नहीं है।

रासबिहारी अब जापान में हैं। वहाँ वे जापानियों को अंग्रेज़ी पढ़ाते हैं, 'एशियन रिव्यू' मासिक पत्रिका की सम्पादकी करते हैं, जापान के

विभिन्न स्थानों में भारतवर्ष के विषय में वक्तृता आदि देते हैं, और भिन्न-भिन्न सामयिक पत्रिकाओं आदि में लेख लिखते हैं। जापान में बहुत पहले ही वे अंग्रेज़ों के हाथ क़ैदी हो जाते, किन्तु जापान के एक ऊँचे दर्जे के अफ़सर के विशेष यत्न और चेष्टा से वे उस आफ़त से छुटकारा पा सके। अब उन्होंने एक उच्च कुल की जापानी महिला का पाणिग्रहण किया है। और उन्हें एक पुत्र और एक कन्या-रत्न प्राप्त हुआ है। पुत्र का नाम है भारतचन्द्र। हमारी भावज सम्भवतः इतने दिन में बंगला सीख चुकी हैं। रासबिहारी अब जापान सरकार की प्रजा हैं।

जापान से रासबिहारी ने अब जो लेख यंग इंडिया और अन्य पत्रिकाओं आदि में भेजे हैं उन्हें शायद बहुत लोग जानते हैं। उन से उन का वर्तमान मत बहुत कुछ जाना जा सकता है। इसके सिवाय अपने कई बन्धुओं को भी उन्हों ने अब पत्र लिखे हैं, यहाँ उनका कुछ अंश उद्धृत कर दूँगा, उसी से उनके वर्त्तमान मतामत का कुछ पता लग सकेगा।

(1)

Tokyo, Japan.
12.4.22

My dearest.........

......The idea that I could not protect...all from

the inhuman...they were subjected to makes me restless. Of course I consoled myself with the fact that by passing through the agony of fire............ have come out a better and purer soul. But I did not like the tone of pessimism that pervaded some parts of ...letter. There is eternal life, so work is eternal. You need not be anxious about impurity even if there is any............Of course there is no necessity of secret work, and I quite agree with you. Hitherto our knowledge of international situation was very meagre. We mostly confined our attention to India. But now I have come to understand a bit of international politics. This has greatly altered my former ideas. Please remember that we shall have to—rather we are destined to—tackle the problem of the world. It is India's mission to usher in a new era of real peace and happiness in the world. India's freedom is but a means to this end, and, it is not an end in itself............

(2)

Tokyo, 9th. July, 22.

My dearest.........

Your letter......reached me yesterday. What did you wish me to write ? And what was your heart's desire ? I think I was sufficiently clear in my letter. Of course there are many things which I cannot write in letters for obvious reasons and your curiosity about them must remain unsatisfied till we meet again. The most noteworthy thing however is that my whole outlook has been broadened and I gave you a hint in this connection in my last letter. Independence India must have. Because her independence is essential for the regeneration of the whole world. It is not the end in itself but it is a means to an end and that end is the destruction of Imperialism and Militarism and the creation of a better world for all to live in. It is India's mission and therefore your and my mission...I like Japan and I have come to adore

her, because I am convinced that she will stand for Asian Independence when time comes. When I came here first; the Japanese had little knowledge of the state of affairs in India. It is chiefly through our efforts and sacrifices that to-day every Japanese is closely following the trend of events in India. I have got many Japanese friends, from the cabinet ministers down to lawyers, M. Ps., journalists and students. Many books in Japanese about Gandhi and Indian movement have been published, and the papers and magazines are regularly carrying articles on India. This month a Professor in the Tokyo Imperial University, published a voluminous book in Japanese on India. Next month I am engaged to deliver lectures on Indian Situation for three days...To-day most of the young men here are staunch advocates of Asian Independence. Even older men and responsible officials are in sympathy with the new awakening noticed from Persia to China. The most remark-

able national trait (here) is patriotism. And the people are ready to revere and love those who have the same characteristics. This is the reason that we are given protection. But for Japanese sympathy and love, I would have been dead long ago... About going back to India well brother, I do not want to return till India is free...Your *Bowdidi* is learning Bengali ..

इसका भावार्थ यह है:—

(१)

टोकियो, जापान.

१२—४—२२

प्राणों के·····, उन्हें मैं अमानुषिक निर्यातनों से बचा नहीं सका, यह धारणा मुझे अत्यन्त अधीर किये रखती थी। जो हो, मैं यही कह कर अपने को सान्त्वना देता था कि इस प्रकार आग में तप कर वे और भी निर्मल और उज्ज्वल हो उठेंगे। किन्तु भाई, तुम्हारे पत्र में जगह जगह जो निराशासूचक बातें थीं वे मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगीं। हमारा जीवन अनन्त है, इसी से हमारा कार्य भी अनन्त है। यदि सचमुच तुम्हारे अन्दर कोई मलिनता हो भी तो चिन्ता की कोई बात नहीं······अवश्य ही अब गुप्त कार्य करने की कोई आवश्ययकता नहीं

है, इस विषय में तुम्हारे साथ मेरी पूरी सहमति है। अब तक हमें अन्तर्राष्ट्रीय अवस्थाओं के विषय में कुछ भी ज्ञान न था। हम ने अब तक भारत की ओर ही ध्यान रक्खा था। किन्तु अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मैं कुछ-कुछ समझने लगा हूँ। इस से मेरे पहले विचारों में बहुत परिवर्तन हो गया है। एक बात याद रक्खो,—हमें अन्त में सारे संसार का प्रश्न हल करना होगा, हमारे भाग्य में यही लिखा है। संसार में नवीन युग ला कर सत्य और शान्ति की स्थापना का दायित्व भारत के ही सिर पर है। भारत की स्वाधीनता इसी उद्देश्य का साधन है, यह स्वयं उद्देश्य नहीं है।

(२)

टोकियो, ६ जुलाई १६२२

प्राणों के ···· तुम्हारी चिट्ठी कल मिली। लिखते हो मेरे पत्र से तुम्हारी आशा पूरी नहीं हुई। तुम्हारे हृदय की इच्छा क्या थी? मुझे तो प्रतीत होता है अपने पत्र में मैंने सब बात स्पष्ट कर के लिखी थी। अवश्य ही ऐसी अनेक बातें हैं जो पत्र में नहीं लिखी जा सकतीं। जब तक फिर हम से भेंट नहीं होती तब तक उन बातों के विषय में तुम्हारी उत्सुकता तृप्त नहीं हो सकती। तो भी सब से बढ़ कर जानने लायक बात यही है कि मेरी दृष्टि पहले से बहुत विस्तृत हो गई है, इस बात का मैंने पिछले पत्र में भी संकेत किया था। पूर्ण स्वाधीनता भारत को चाहिए ही, क्यों कि उसकी स्वाधीनता पर सारे

संसार का पुनरुद्धार निर्भर है। यह स्वयं एक साध्य नहीं, प्रत्युत एक उद्देश्य का साधन है, और वह उद्देश्य है साम्राज्य-सत्ता और सैनिक आधिपत्य का संहार और सब लोगों के रहने को एक नये अच्छे संसार की सृष्टि। यही भारत का उद्देश्य है, और इसी लिए तुम्हारा और मेरा उद्देश्य है,... मैं जापान को बहुत चाहता हूँ और उस पर श्रद्धा करने लगा हूँ, मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि उपयुक्त समय आने पर जापान एशिया की स्वाधीनता के लिए सिर उठायेगा। जब मैं पहले यहाँ आया, जापानियों को भारत की अवस्था का कुछ भी ज्ञान न था। किन्तु अब मुख्यतः हमारी चेष्टा और त्याग के कारण प्रत्येक जापानी भारत के घटना-प्रवाह को उत्सुकता से देख रहा है। मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से ले कर वकीलों, पार्लमेण्ट के मेम्बरों, पत्र-सम्पादकों और विद्यार्थियों तक मेरे बहुत से जापानी मित्र हैं। जापानी भाषा में गांधी और भारतीय आन्दोलन के विषय में बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, और पत्र-पत्रिकाओं में भारत पर लगातार लेख निकल रहे हैं। इसी महीने टोकियो इम्पीरियल विद्यापीठ के एक प्रोफ़ेसर ने जापानी में भारत विषयक एक विराट् ग्रन्थ लिखा है। अगले महीने मुझे भारत के विषय में तीन दिन व्याख्यान देने होंगे। आज यहाँ के बहुत से नवयुवक एशिया की स्वाधीनता के कट्टर पक्षपाती हो गये हैं। बूढ़े लोग और ज़िम्मेदार अफ़सर भी फ़ारिस से चीन तक फैली हुई नई जागृति से सहानुभूति रखते हैं।

देशभक्ति तो जापानियों की जातीय विशेषता ही है। और ये लोग जिन में भी वह गुण देखते हैं उन्हीं पर प्रेम और श्रद्धा करने लगते हैं। यही कारण है कि हमें शरण मिली है। जापानियों की सहानुभूति और प्रेम न मिलता तो मैं बहुत पहले मर चुका होता।......भाई देश में वापस आने के विषय में मुझे यही कहना है कि जब तक भारत स्वाधीन न हो मैं वापस आना नहीं चाहता।......तुम्हारी बौदीदी (भावज) बँगला सीख रही हैं।......

इन पत्रों से रासबिहारी के मन की वर्त्तमान अवस्था के विषय में बहुत कुछ जाना जा सकता है। किन्तु वर्त्तमान अवस्था की बात छोड़ कर जिस समय की अवस्था लिख रहा था, उसी समय की बात फिर लिखता हूँ।

(२) केन्द्र की कहानी

रासूदा भारत छोड़कर चले गये; उन्हें जहाज़ पर चढ़ाकर हम और गिरिजा बाबू अपने केन्द्र में वापस आ गये। केन्द्र के साथ हमारा सम्बन्ध खूब घनिष्ट नहीं था, और ऐसा होने के अनेक कारण थे।

प्रथमतः केन्द्र के नेताओं के साथ हमारे राजनैतिक मतों में मेल न था। वे इस विप्लव समिति की स्थापना के आरम्भ से ही टैररिज़्म (त्रास फैलाने) के पक्षपाती थे। उन्होंने अब तक देश में सशस्त्र विप्लव करने के लिए कोई चेष्टा न की थी। वे समझते थे कि यदि कुछ दिन तक देश के एक छोर से दूसरे छोर तक अंग्रेज़ गवर्नमेंट के ऊँचे कर्मचारियों का रिवाल्वर और बम से काम तमाम कर दिया जाय तो गवर्नमेंट घबड़ाकर देश को अनेक राजनैतिक अधिकार दे देगी। और इस प्रकार तमंचे के ज़ोर से अधिकार के बाद अधिकार प्राप्त करते हुए अन्त में पूर्ण स्वायत्तशासन तक ले लेना सम्भव है, ऐसा उन लोगों के मन का विश्वास था। भारत के लिए पूर्ण स्वायत्तशासन ले लेने का ही अर्थ होता स्वाधीनता की प्रथम सीढ़ी पर पहुँच जाना,

क्योंकि पूर्ण स्वायत्तशासन प्राप्त कर लेने पर भारत के लिए स्वाधीनता पाना कुछ कठिन बात न होती। वे यह भी कहते थे कि इस प्रकार अथवा किसी और प्रकार स्वायत्तशासन पाये बिना भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता पाना सम्भव नहीं है। उनका विश्वास था, टैररिज़्म (त्रास फैलाने) के द्वारा ही सहज में और थोड़े समय में पूर्ण स्वायत्तशासन पाया जा सकता है। यह कार्यप्रणाली उन्हें बंगाल के किन्हीं स्वनामधन्य देशपूज्य नेता से प्राप्त हुई थी। किन्तु इस टैररिज़्म को भी सार्थक करने के लिए दल का जैसा गठन करने की आवश्यकता थी वह भी वे न कर सके थे। जैसे किसी जगह के एक मैजिस्ट्रेट को मारना होता तो एक युवक को रिवाल्वर दे कर उस जगह भेज देते, यद्यपि पहले से उस जगह पर दल के गठन की कोई चेष्टा न हुई होती थी।

सुनियन्त्रित, उपयुक्त और शक्तिशाली संघ के बिना आज कल कोई कार्य भी सफल नहीं हो सकता; और भारत के लिए स्वायत्तशासन पाने का अर्थ स्वाधीनता पाना ही है; ऐसे एक विराट और कठिन कार्य को सफल करने के लिए कैसे विशाल और शक्तिशाली संघ की आवश्यकता थी, हमारे केन्द्र के नेता लोग यह बात भली प्रकार नहीं समझ सके। इसी से इन की नायकता में बंगाल में कोई भी विशेष दल नहीं उठ खड़ा होता; इन के दल का क्षुद्र दायरा ग्राम की सीमा पार नहीं कर पाता। इस प्रकार कार्य करने से कृतार्थ न होने की ही सम्भावना थी; इसी से केवल इन के यत्न से, कहा जा सकता है, त्रास (Terrorism)

की कोई चेष्टा सार्थक नहीं हुई। इस कार्यप्रणाली के विषय में इन के साथ मेरा प्रायः घोर विवाद होता।

इस प्रकार दल का आदर्श केवल टैररिज़्म रक्खा जाने के कारण ही मेरे समान अनेकों युवक इन के आदर्श में जी-जान एक करके साथ न दे सकते थे। और इस प्रकार के त्रास का आदर्श सचमुच चिन्ताशील युवकों के हृदयों को आकर्षित नहीं कर सकता। यथार्थ में खूब ऊँचे, उदार और विशाल आदर्श की प्रेरणा के बिना कोई व्यक्ति अपने जीवन की और अपने सर्वस्व की बाज़ी लगा कर देश के कार्य में योग नहीं दे सकता। इसी से टैररिज़्म के आदर्श पर लोक-संग्रह सम्भव न था। इसी लिए लोक संग्रह के लिए अन्यान्य अनेक आदर्श लाये जाते और विप्लवसमिति की कार्यप्रणाली के विषय में प्रायः सब को ही घोर अँधेरे में रक्खा जाता। इस प्रकार केवल कुछ लोगों का संग्रह करके उन के द्वारा केवल टैररिज़्म के काम कराये जाते, यह बात हमारे मन के माफ़िक न थी। रासबिहारी और उनके मतावलम्बी युवकों के साथ बातचीत होने के बाद जिस दिन पहले-पहल इन सब नेताओं के साथ मेरा परिचय हुआ उस दिन मैं एकदम स्तब्ध सा हो गया था, सोचता था यह फिर कैसे दल में आ घुसा! उन की बातों का प्रतिवाद मैंने उसी दिन किया था, और रासबिहारी के साथ फिर बातचीत होने पर उन से भी इस विषय में शिकायत की थी। उसी दिन से रासबिहारी ने मुझ से कह दिया

कि कर्मयोग और धर्मसाधना की बातों के सिवाय अपनी कार्यप्रणाली के विषय में कोई बात इन के साथ फिर मत करना।

रासबिहारी बचपन से ही इन के संसर्ग में थे, पर इन की प्रकृति के साथ उनकी प्रकृति का मेल न था। ज़रा बड़े हो कर जब वे देहरादून नौकरी करने गये तभी वे अपने कार्य की धारा की अपने आप ही सृष्टि करने लग। प्रकृति देवी जैसे सब से अलक्षित ही अपने सब कार्यों की सृष्टि कर डालती हैं, रासुदा भी वैसे ही अपने नेताओं से अज्ञात एक विशाल दल खड़ा कर डालते हैं, बेशक कार्य कुछ आगे बढ़ जाने के बाद केन्द्र के नेताओं को उन्होंने बहुत कुछ बतला दिया था। रास-बिहारी इन के समान केवल त्रास (Terrorism) के पक्षपाती न थे, इसी कारण उन की कार्यप्रणाली एक और ही क़िस्म की थी। किन्तु इन के साथ मत का मेल न रहने पर भी रासबिहारी विरोध और दलबन्दी के पक्षपाती न थे, इसी से इन के साथ जहाँ तक सम्भव होता मिल-जुल कर ही काम करते थे।

एक और कारण से भी केन्द्र के नेताओं के साथ हमारा भारी विरोध रहता था। ये नेता लोग समझते थे कि आध्यात्मिकता का गूढ़ मर्म्म केवल वही लोग प्राप्त कर सके थे, इसी से उनके साथ मतभेद होते ही वे कह देते कि हम लोग बिलकुल पाश्चात्य आदर्श में मतवाले हो गये हैं; मानो त्रास फैलानें (Terrorism) की अपेक्षा ख़ालिस विप्लव की चेष्टा अधिक पाश्चात्य आदर्श से अनुप्राणित थी,— विरुद्ध पक्ष के मत

का खण्डन करने की यह अकाट्य युक्ति आज-कल बहुत लोगों की ज़बान पर सुनी जाती है।

ये लोग अनेक प्रकार से प्रचार करते थे कि वैराग्य-साधना अथवा ध्यान-धारणा और समाधि का मार्ग ही भगवान् को पाने का एकमात्र श्रेष्ठ मार्ग नहीं है। इसी से ये लोग प्रचार करते थे कि संसार को त्यागे बिना संसार के सब कार्यों को ठीक प्रकार करते हुए संसार में अनासक्त हो कर रहना ही श्रेष्ठ मार्ग है, किन्तु व्यवहारक्षेत्र में ये अपनी क्षुद्र टोली को राजनीति से प्रयत्नपूर्वक पृथक कर रखने की भरपूर चेष्टा करते थे। इसी से हमारे साथ इन का नित्य ही विरोध होता। जिस दिन पंजाब का विप्लवायोजन विफल होने के बाद हम ने इस केन्द्र में आ कर ज़रा दम लेने के लिए आश्रय लिया उसी दिन इन लोगों ने चुटकी लेकर हम से कहा था, "बहुत कूद-फाँद हो चुकी, अब ज़रा शान्त हो कर बैठ कर भगवान् की आराधना करो।"

हमारा विचार है कि इन की प्रकृति विप्लव धर्म की विरोधी थी, इसी से ये लोग अनेक घटनाचक्र में पड़ कर क्रमशः इस विप्लव के चक्कर से बहुत दूर हटते गये। ये लोग मुँह से ज्ञान, कर्म और वैराग्य के बीच समन्वय करके चलने के आदर्श का प्रचार भले ही करते थे, किन्तु कार्यक्षेत्र में और सब प्रकार से संसार के कार्य में लिप्त रह कर भी राजनीति से, विशेषतः जिस राजनीति के आदर्श का अनुसरण करने से अंग्रेज़ सरकार के साथ विरोध होना ज़रूरी होता उस मार्ग से बड़े यत्न

के साथ बच-बच कर चलने की चेष्टा करते थे। निःसन्देह जब तक ये लोग दूसरे विप्लवियों के संस्पर्श में थे, तब तक सब तरह से भीषण विपत्ति की भी परवाह न करते हुए उन सब विप्लवियों की सहायता करते थे, किन्तु इन की प्रकृति दूसरी तरह की थी इसी से इन्होंने प्रायः इन सब विप्लवियों का संग छोड़ दिया था। जिस प्रकार वैराग्य की प्रवृत्तिवाले महापुरुष पहले-पहल संसार और भोग में लिप्त रहते हैं, किन्तु स्वधर्म-वश धीरे-धीरे उसी वैराग्य के मार्ग का अवलम्बन कर अन्त में संसार त्याग देते हैं, उसी प्रकार हमारे ये नेता लोग पहले-पहल विप्लवसमिति के साथ अन्तरंग रूप से लिप्त थे, पर स्वधर्मवश ये लोग सब प्रकार के विप्लव के अनुष्ठान से धीरे-धीरे दूर सरक गये और अन्त में विप्लव कार्य में योग देना जहाँ इन्होंने छोड़ दिया वहाँ संसार को ही नहीं छोड़ दिया। इसी प्रकार राजनीति को ही छोड़ा पर और सब प्रकार से समाज की सेवा ये लोग करते रहे।

इन सब कारणों से इन के साथ हमारा मन न मिलता था। जब तक रासबिहारी देश में थे तब तक वे इन से दूर-दूर रहने पर भी इन को बड़ा मान कर चलते थे, मालूम होता है इस का प्रधान कारण यह था कि रासबिहारी बचपन से ही इन्हीं की नायकता में ऊपर उठे थे, किन्तु क्रमशः रासूदा के चरित्र में भी ऐसा परिवर्त्तन हो गया था कि भारत त्याग करने से पहले जब वे इनके पास अन्तिम बार आये थे तब ये रासूदा के व्यक्तिगत प्रभाव को देख कर कह उठे थे, "इसे किस प्रकार छिपा

रक्खें ! इसे जो देखेगा उसी की दृष्टि इस पर अटक जायगी, इसे देख कर ही मानो मालूम होता है 'हाँ, एक मनुष्य—असल मनुष्य बैठा है ।" जिस समय की यह बात है उस समय इन के मकान की मरम्मत का काम चलता था इसी लिए कुली मज़दूर आदि नित्य मकान के भीतर जाया-आया करते थे । इन सब कुली-मज़दूरों के जाने-आने का ख़्याल करके ही उन्होंने यह बात कही थी । एक दिन यही रासूदा के गुरु के समान थे, किन्तु अन्त में शिष्य के प्रभाव से मुग्ध हो गये थे । रासबिहारी के विदेश चले जाने के बाद से क्रमशः हम लोग इन सब नेताओं से दूर हटते गये । इस समय बंगाल में जो सब विप्लव दल थे उन में से ढाका के विप्लव दल के साथ हम सब से अधिक घनिष्ठ रूप से मिल-जुल कर काम करते थे ।

—

(३) ढाका अनुशीलन समिति की कहानी

बंगाल में सभी विप्लवदलों की धारणा थी कि ढाका की अनुशीलनसमिति दूसरी विप्लवसमितियों के साथ मिल-जुल कर काम करने को अनिच्छुक है, अथवा बंगाल की कोई भी विप्लवसमिति ढाका की अनुशीलनसमिति के साथ मिल-जुल कर काम न कर सकेगी। किन्तु वे लोग यह न जानते थे कि ढाका की समिति चन्दननगर अथवा रासबिहारी के दल के साथ पूरी तरह मिल गई थी, और यह मिलना युरोपियन महायुद्ध से बहुत पहले ही हो गया था। मेरी जहाँ तक जानकारी है उस से इतना कह सकता हूँ कि सब दोष-गुण मिला कर यह ढाका की अनुशीलनसमिति बंगाल की अन्यान्य अनेक विप्लवसमितियों की अपेक्षा श्रेष्ठ थी। इन के समान बड़ा दल बंगाल में और किसी विप्लवसमिति का न था। पूर्व बंगाल और उत्तर बंगाल के प्रायः प्रत्येक ज़िले में इन की शाखा-प्रशाखा थीं। यह तो सभी मानते हैं कि सख्या और विस्तार में बंगाल के सब विप्लव दलों से ये बढ़े-चढ़े थे। किन्तु पश्चिम बंग के विप्लव दल के नेता पूर्व बंग के दल को कम बुद्धिमान् समझते थे, इसी से पूर्व बंग के दल को वे विश्वास की दृष्टि से न देखते थे। पश्चिम बंग के विप्लव दल के युवक लोग पूर्व बंगाल के युवकों

की अपेक्षा अपने को अधिक संस्कृत और सुशिक्षित (Cultured) समझते थे। इस के सिवाय ढाका की अनुशीलन समिति को बंगाल के प्रायः सभी विप्लव दल परिमाण में छोटा होने के कारण ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे, इन्हीं सब कारणों से चन्दननगर अथवा रासबिहारी के दल को छोड़ कर बंगाल का और कोई दल भी ढाका के अनुशीलन दल के साथ मिल कर एक अखण्ड दल खड़ा कर लेने को इच्छुक न था। मनुष्य का अहङ्कार बड़ी भयानक वस्तु है। यह मनुष्य को ऊपर उठाने में जैसी सहायता करता है वैसे ही नीचे गिराने में भी त्रुटि नहीं करता। अहङ्कार को सुसंयत करना बड़ा कठिन काम है, इसी से प्रायः सभी जगह इसी अहङ्कार से अनेक अनर्थों की सृष्टि हुई है। बंगाल में भिन्न-भिन्न विप्लव दल मिल कर एक विराट् दल में परिणत न हो सके इस का मुख्य कारण इन भिन्न-भिन्न दलों के नेताओं की उग्र अहङ्कार-बुद्धि ही थी। बंगाल का कोई दल यदि दूसरे दलों के साथ मिल-जुल कर एक होने की चेष्टा नहीं करता और अन्त में चेष्टा करने पर भी कृतकार्य नहीं हो सकता तो इसी अहंकार के प्रभाव के कारण। इसी लिए बंगाल में अनेक क्षुद्र विप्लवदलों का अस्तित्व था। ऐसा जान पड़ता है मानो बंगाल में कर्मियों की अपेक्षा नेताओं की संख्या ही अधिक है। बंगाल में जो दस युवकों को भी एकत्रित कर पाया वही एक नेता बन कर खड़ा हो गया; एक बार नेता हो जाने पर फिर वे अन्य किसी दल के साथ मिल जाना स्वीकार न करते; इस का प्रधान कारण

यही था कि ये सब नेता कहलाने वाले सोचते थे कि इस प्रकार अन्यान्य दलों के साथ मिल जाने से उन की स्वतन्त्रता एकदम नष्ट हो जायगी। मेरा विचार है कि बंगाल के भिन्न-भिन्न क्षुद्र दलों के नेताओं के मन में ऐसा भाव था इसी कारण वे ढाका के दल के साथ मिलना स्वीकार न करते थे; वे सोचते थे किसी बड़े दल के साथ मिल जाने से उनका क्षुद्रत्व प्रकट हो जायगा और उस बड़े दल में शायद उनकी प्रधानता कुछ भी न रहेगी। बहुत बार मैंने स्वयं बंगाल के कुछ विप्लव दलों को ढाका दल के साथ मिलाने की चेष्टा की है, किन्तु किसी बार भी कृतकार्य नहीं हुआ। निःसन्देह ऐसा मिलाप न होने का एक और भी विशेष कारण था। बंगाल के भिन्न-भिन्न विप्लव दलों के बीच ऐसे कोई प्रतिभावान् शक्तिशाली पुरुष नहीं हुए जिन की व्यक्तिगत मोहनी शक्ति के बल से खिंच कर भिन्न-भिन्न दल अन्त में एक दल में परिणत हो सकते। अवश्य ही वैसे किसी प्रभावशाली व्यक्ति के होने पर भी बंगाल के सब दल मिल कर एक हो जाते कि नहीं इस में भी सन्देह है।

चाहे जिस कारण से हो बंगाल के प्रायः सभी विप्लव दल ढाका की समिति के प्रति असंतुष्ट थे। शायद इस का एक कारण यह था कि पूर्व बंगाल की अनुशीलन समिति के प्रायः सभी सदस्यों के मन में कुछ ऐसे गर्व का भाव था कि उन के समान शक्तिशाली दल बंगाल में और कोई नहीं है। जान पड़ता है कि इसी लिए पश्चिम बंग के विप्लव दलों का पूर्व बंगाल के दो-एक छोटे-छोटे विप्लव दलों के प्रति वैसा

द्वेष न था जैसा इस ढाका समिति के प्रति था। ऐसा होने का एक और कारण भी था। ढाका समिति पुलिन बाबू द्वारा स्थापित हुई थी। और इन पुलिन बाबू की प्रकृति में स्वेच्छाचारिता (autocracy) का भाव भयानक रूप से प्रबल था। पुलिन बाबू सचमुच और किसी के साथ मिल कर काम करने के पक्षपाती न थे। पुलिन बाबू का आधिपत्य जहाँ ज़रा भी कम हो वहाँ पुलिन बाबू का रहना असम्भव होता, इस अंश में पुलिन बाबू और वारीन बाबू एक ही प्रकृति के आदमी थे। इसी कारण पुलिन बाबू की विद्यमानता में ढाका की समिति और किसी समिति के साथ मिल न सकी, और बहुत कुछ पुलिन बाबू के कारण ही उसी समय से बंगाल के सभी दल ढाका समिति के प्रति असन्तुष्ट हो जाते हैं और समय बीतने पर वही असन्तोष की आग क्रमशः बुरा रूप धारण कर लेती है। असल में मिल-जुल कर काम करने के लिए जो समझौते की प्रवृत्ति (compromising attitude) होनी चाहिए, पुलिन बाबू में उस जिन्स का विशेष अभाव था। किन्तु पुलिन बाबू को जेल होने के बाद ढाका समिति में एकच्छत्र आधिपत्य और किसी का नहीं रहता। तभी से यह समिति बहुत कुछ गणतन्त्र के आदर्श पर गठित हो गई। बंगाल के भिन्न-भिन्न दल अपने नेताओं के नाम से ही परिचित थे, जैसे यतीन बाबू का दल, विपिन बाबू का दल इत्यादि। किन्तु पूर्व बंगाल की इस ढाका समिति का कोई एक निर्दिष्ट नेता न रहने से यह अन्त तक ढाका

अनुशीलन समिति के नाम से ही परिचित होती आई है। इस प्रकार सर्वांश में एक व्यक्ति के नेतृत्व में न रहने से यह दल कुछ कम शक्तिशाली हो गया हो सो भी नहीं, कारण कि जितने आँधी तूफ़ानों में से इस ढाका समिति को गुज़रना पड़ा है उतने किसी और दल ने भी सहे हैं कि नहीं इस में संदेह है। बार-बार विषम विपत्तियों में पड़ कर भी फिर यह दल सिर उठाकर खड़ा हो गया है। पूर्व बंग के युवकों की यही एक विशेषता है कि वे एक बार ज़िसे ग्रहण कर लें उसे जीवन रहते तक चिपटकर पकड़े रहते हैं। पश्चिम बंग के लोग पूर्व बंगाल के चाहे जितने दोष देखा करें, मुझे तो प्रतीत होता है कि पूर्व बंगाल के युवक पश्चिम बंग के युवकों की अपेक्षा अधिक सरल और अधिक दृढ़प्रतिज्ञ निकलते हैं। पश्चिम बंग के लोगों में आंतरिकता कम है, और स्वदेशी युग के इतिहास की आलोचना करने से देखा जाता है कि पूर्व बंगाल सभी प्रकार से राष्ट्रीय कार्यों में पश्चिम बंगाल की अपेक्षा अधिक अग्रसर रहा है। पूर्व बंगाल के युवक और सब बातों में अच्छे हैं, पर उन में यह एक बड़ा दोष है कि वे अनेक बार बड़े तिकड़मी (intriguing) साबित होते हैं और उन में, मालूम होता है, संकीर्ण प्रादेशिकता का भाव भी कुछ प्रबल है। ख़ैर, जो भी हो, पुलिन बाबू के बाद ढाका समिति के जो नेता हुए, उन्होंने बहुत कुछ

रूप से एक न हो जायँगे तो देश का मंगल नहीं है। इसी से वे देश

के सभी दलों के साथ मिलने को इच्छुक थे, इसी लिए सम्भवतः बारीसाल षड्यन्त्र के मामले के समय ही ढाका समिति चन्दननगर दल के साथ मिल जाती है। काशी का दल भी इस ढाका समिति की मार्फ़त ही रासबिहारी के उत्तर भारत के दल के साथ परिचित हुआ। इस प्रकार हमारा दल पूर्व बंगाल से ले कर पंजाब तक फैल कर एक साथ काम करता रहा। पंजाब के विप्लवायोजन के संवाद भी अधिकांश स्थानों में इसी ढाका समिति की मार्फ़त ही बंगाल के भिन्न-भिन्न विप्लव दलों के पास भेजे जाते थे। लाहौर, दिल्ली, काशी, चन्दननगर और ढाका के विप्लवदल इस प्रकार बिलकुल एक हो जाते हैं। किन्तु इस बात को बंगाल के अन्यान्य विप्लवदल उस समय घुणाक्षर न्याय से भी न जान सके थे।

जिस समय डिफ़ेंस आफ़ इंडिया ऐक्ट (भारत रक्षा क़ानून) से कई हज़ार युवक केवल संदेह के फेर में बिना विचार क़ैद हो गये, उस समय बंगाल के सभी दलों ने शक्तिहीन हो कर परस्पर मिल-जुल कर एक साथ काम करने की इच्छा प्रकट की और कुछ दिन तक उस प्रकार कार्य चला भी। यह मिलाप यदि समय रहते हो जाता तो शायद फल और ही तरह का हो सकता। रासबिहारी भारत छोड़ने से पहले जब एक बार कलकत्ते के निकट कहीं आये, उस समय उन्होंने कलकत्ता अंचल के भिन्न-भिन्न दलों के निकट मिल कर एक हो जाने का प्रस्ताव कर भेजा। किन्तु कलकत्ता अंचल के किसी भी दल ने इस मिलने के

प्रस्ताव की कुछ परवाह नहीं की। विवश हो कर रासूदा को इस चेष्टा से हाथ खींचना पड़ा।

जो हो रासूदा की विदेश यात्रा के बाद भी हम इस पूर्व बंगाल के दल के साथ पहले की तरह ही मिलकर काम करने लगे। रासूदा की विदेश यात्रा का खर्च, एक हज़ार रुपया, इसी ढाका समिति से लिया गया। जिस समय रासूदा को विदेश भेजा गया तब तक भी बंगाल के विप्लवदलों की शक्ति कुछ भी कम न हुई थी। प्रत्युत उस समय बंगाल के भिन्न-भिन्न विप्लव दलों के बीच प्रतियोगिता चलती थी कि कौन कितना काम कर के दूसरे दलों को लज्जित कर सकता है। रासूदा को विदेश भेज कर हम ने समझा था विदेश से अस्त्र मँगाने की चेष्टा हमारे दल से ही सब से पहले हुई है, किन्तु हम उस समय न जानते थे कि यतीन बाबू के दल ने भी ठीक इसी समय अपने आदमी विदेश भेजे थे। देश में चाहे हम भिन्न-भिन्न दल इस प्रकार विच्छिन्न हो कर कार्य करते थे, किन्तु विदेश में उस समय सभी दल, मालूम होता है, मिल गये थे।

इस समय की घटनाएँ भली भाँति मेरी जानी नहीं हैं, विशेष कर विदेश में किस प्रकार काम चलता था उसकी अनेक बातें मैं नहीं जानता, क्यों कि रासूदा के विदेश जाने के दो-तीन मास बाद ही मैं पकड़ा गया। तो भी पूर्व बंग के गिरिजा बाबू जब नवम्बर मास (सन् १९१५) में पकड़े जा कर काशी आये थे तब उन के नज़दीक सुना था कि रासूदा ने कहीं संवाद भेजा है कि वे शीघ्र ही देश वापिस आने वाले

हैं। उन के साथ बात थी कि विप्लव चलाने के लिए उपयुक्त अस्त्र-शस्त्र यथेष्ट परिमाण में पहुँचाने का पूरा बन्दोबस्त कर चुकने पर ही वे देश आवेंगे, इसी से उनकी "देश वापस आता हूँ" यह ख़बर पा कर हम ने समझा कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्र पहुँचाने का कोई अच्छा बन्दोबस्त कर लिया है। किन्तु ठीक उसी समय एक और विश्वस्त सूत्र से हम ने जान पाया कि सरकार बहादुर विदेश से अस्त्र लाने के सभी संवाद जान गई थी और भारतवर्ष के तट के निकट दो-तीन अस्त्र भरे जहाज़ भी कहीं पकड़ लिये गये हैं। पीछे रौलट कमिटी की रिपोर्ट में अनेकों बातें पढ़ीं। विगत विप्लव युग के इतिहास का यह अंश श्रीयुत नलिनीकिशोर गुह प्रणीत "बांगलाय विप्लववाद" में विस्तृत रूप से आलोचित हुआ है। विप्लव युग के इस अंश को मैं नलिनी बाबू के ग्रन्थ से ही कुछ-कुछ उद्धृत कर के पाठकों की भेंट करूँगा।

---

(४) विदेश में भारतीय विप्लववादी गण

भारत की विप्लव चेष्टा को सार्थक करने के लिए विदेशी राजशक्ति की सहायता अत्यन्त आवश्यक है, यह बात भारत के प्रायः सभी विप्लव-वादी स्वीकार करते थे। वे जानते थे कि पृथ्वी पर अंग्रेज़ों के जो अनेक शत्रु हैं, सुविधा और सुयोग पाने पर वे भारतवासियों को भी अंग्रेज़ों के विरुद्ध सहायता देने में पीछे न रहेंगे, और यदि भारतवर्ष में वैसे उपयुक्त नेताओं का आविर्भाव हो जाय तो वे एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या की सृष्टि कर सकेंगे जिस के द्वारा पृथ्वी के शक्तिशाली साम्राज्यों के बीच प्रतिद्वन्द्विता और ईर्ष्या का सदुपयोग करके वे भारतवर्ष को स्वाधीनता के उच्च शिखर पर ले जाने में समर्थ हो जायँ।

संसार में ऐसे दृष्टान्तों का अभाव नहीं है जहाँ प्रबल राजशक्तियों के परस्पर के द्वन्द्व के कारण अपेक्षाकृत दुर्बल जातियाँ प्रबलों के ग्रास से छुटकारा पा गई हैं। एवं पुराने ज़माने की अपेक्षा आजकल यह बात, मालूम होता है, और भी निःसंशय रूप से कही जा सकती है कि पृथ्वी पर ऐसा कोई भी देश नहीं है जिस के भले-बुरे अथवा उत्थान-पतन के साथ पृथ्वी के अन्य देशों का कोई भी सम्बन्ध अथवा स्वार्थ न हो। इसी से भारत के विप्लववादियों की दृष्टि पहले से ही विदेश की

तरफ़ आकर्षित हुई थी। किन्तु वे यह भी भली प्रकार जानते थे कि भारत का विप्लवदल यदि उपयुक्त रूप से शक्तिशाली न होगा तो विदेशियों की सहायता भारतवासी ग्रहण न कर सकेंगे, और सहायता ले सकने वाले आदमी न रहें तो सहायकों के रहने से भी कुछ नहीं बनता। प्रबल की सहायता और प्रबल की दुर्बल को निगल लेने की चेष्टा इन दोनों के बीच जो भेद है उसे भारत के विप्लववादी खूब समझते थे, और ठीक इसी कारण से बहुत दिन तक, जब तक घर में शक्ति न थी, देश के विप्लव दल ने विदेशों की ओर दृष्टि नहीं लगाई थी।

किन्तु विप्लव चेष्टा के आरम्भ से ही इस प्रकार विदेशों की ओर दृष्टि रक्खी जाती तो गत जर्मन युद्ध के समय भारत का विप्लवायोजन बिलकुल व्यर्थ न होता। भारतीय विप्लवदल में वैसे कोई दूर दृष्टि वाले प्रतिभावान् उपयुक्त पुरुष न रहने से ठीक समयानुसार वे देश को भी तैयार न कर सके, और ठीक किस समय से विदेशियों के साथ सम्बन्ध सूत्र स्थापित करना उचित है, यह भी वे निर्णय न कर सके।

विप्लववादी भारतवासियों में से सब से पहले श्यामजी कृष्ण वर्म्मा विदेश गये और उन के संस्पर्श से और उन की चेष्टा से अनेक विदेशस्थ भारतीय युवक विप्लव धर्म में दीक्षित होते रहे। सन् १९०५ के दिसम्बर महीने में श्यामजी ने इस बात का विचार किया कि छः उपयुक्त भारतवासियों को छः हज़ार रुपया वृत्ति देंगे जिस से वे युरोप, अमेरिका और पृथ्वी के अन्यान्य स्थानों में घूम कर भारतवासियों को

स्वाधीनता के मन्त्र में दीक्षित करने के लायक़ शिक्षा उपार्जन कर सकें। इसी समय एस० आर० राणा नामक एक महाराष्ट्र सज्जन ने श्यामजी के पास पैरिस से इसी विषय का एक पत्र लिखा कि वे भी तीन भारतवासियों को छः हजार रुपया राह ख़र्च की बाबत वृत्ति देंगे, और ये वृत्तियाँ राणा प्रतापसिंह, शिवाजी और किसी स्वनामधन्य मुसलमान राजा के नाम पर समर्पित की जायँगी। इन का उद्देश्य था इस प्रकार उपयुक्त शिक्षित भारतवासियों को भारत के बाहर ला कर विप्लव कार्य में उपयुक्त कर्मी रूप से तैयार कर देना। किन्तु इन की चेष्टा से कोई विशेष कार्य हुआ कि नहीं, मुझे मालूम नहीं।

ईसवी सन् १६०६ में विनायक दामोदर सावरकर नामक एक प्रतिभावान महाराष्ट्र ब्राह्मण लण्डन में बैरिस्टरी पढ़ने गये और इन के आने से श्यामजी कृष्ण वर्मा का कार्य ख़ूब तेज़ी से अग्रसर हुआ। किन्तु ये भी विदेश की किसी भी राजशक्ति के साथ कोई भी सम्बन्ध सूत्र स्थापित नहीं कर पाये।

विनायक सावरकर लण्डन में ही रहते थे। जब बंगाल के प्रसिद्ध हेमदास भी विलायत गए, किन्तु हेमदास बम और विस्फोटक पदार्थ बनाने की शिक्षा पाने की ख़ातिर ही विदेश गये थे, इसी से उन्होंने भी विदेशी राजशक्ति के साथ कोई भी सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा नहीं की।

पंजाब के विख्यात लाला हरदयाल भी इस समय विलायत में थे एवं विलायत के विप्लववादियों के संस्पर्श में आ कर वे भी पूरे उद्यम से विप्लव कार्य में योग देने लगे, किन्तु इन्होंने भी उस समय किसी राजशक्ति की सहायता लेने की ओर ध्यान नहीं दिया।

इसी बीच स्वदेशी आन्दोलन की प्रबल बाद में बंगाल प्लावित हो गया और बंगाल के अशान्त युवकों के मन-प्राण, उस समय दुस्साध्य साधन में, विपत्ति के मुँह में कूद पड़ने लगे। इतने दिन तक केवल धनियों की ही सन्तान बैरिस्टरी अथवा आई० सी० एस० पढ़ने के लिए अथवा विलायत के भोगविलास के दृश्य अपनी आँखों देख आने के लिए ही भारत के बाहर जाया करती थी, किन्तु बंगाल के नवजागरण के प्रभाव से कई युवक देश सेवा के आदर्श से उद्‌बुद्ध हो कर, और दूसरे भी अनेकों जो देश में शान्त, सुबोध, भले लड़के होने की ख्याति पाने से वंचित थे, जिन की उद्दाम प्रकृति की अशान्त गति देश की आबहवा में प्रकाशित होने का सुयोग न पाती थी,—ऐसे भी अनेकों युवक अमेरिका में आ इकट्ठे हुए। इन में से श्रीयुत तारकनाथ दास के नाम से हम लोग सुपरिचित हैं।

श्यामजी कृष्ण वर्मा लण्डन में कुछ दिन काम करने के बाद अन्त में फ्रांस भाग आने को बाधित हुए। इस समय पैरिस में एक विप्लववादी पारसी रमणी भी थी, जिसका नाम था मैडम कामा।

लाला हरदयाल भी इसी बीच एक बार देश आ कर फिर अमेरिका वापस चले आये। अमेरिका के कुछ विश्वविद्यालयों में उन्होंने बीच में कुछ दिन हिन्दू-दर्शन-शास्त्र के अध्यापक का काम भी किया था। इसी समय तारकनाथ दास भी अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हो गये थे। इन के सिवाय और भी एक बंगाली सज्जन इस समय अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में अध्यापक का कार्य करते थे। यही "बांगलाय विप्लववाद" में उल्लिखित सुरेन्द्र-कर थे कि नहीं, कह नहीं सकता। अमेरिका में "ग़दर" दल स्थापित होने के कुछ दिन बाद लाला हरदयाल और इन बंगाली अध्यापक ने एक बार अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेन्ट के साथ भेंट की और उन से अनुरोध किया कि अमेरिका में भारतवासियों को युद्ध विद्या सीखने और अन्यान्य कई विषयों में सुयोग दिया जाय। अमेरिका के प्रेसीडेन्ट ने उन से भेंट ही की; उन के किसी अनुरोध को माना नहीं। इधर अकृतकार्य हो कर उन्होंने अन्य एक राजशक्ति के पास अपना आवेदन रक्खा और इस दफ़ा उनका आवेदन स्वीकृत भी हो गया। इस घटना का बन्दी-जीवन प्रथम भाग में (तीसरे परिच्छेद में) उल्लेख किया गया है। किन्तु अमेरिका के इस विप्लव दल के साथ भारत के विप्लव दल का वैसा सम्बन्ध न था।

इसी समय या इस से कुछ पहले बंगाल की एक विप्लव समिति की ओर से एक युवक को बर्लिन भेजा गया, किन्तु ये जर्मन सरकार के

के ऊपर कुछ प्रभाव न डाल सके। विदेशी राजशक्ति पर प्रभाव डालने के लिए जिस योग्यता और चरित्रबल की आवश्यकता होती है, इन युवक में इसका अभाव था।

जो हो, जिस समय अमेरिका में विप्लव दल एक विदेशी राजशक्ति के साथ सम्बन्ध सूत्र स्थापित करने में कृतकार्य हुआ उस से कुछ ही दिन बाद युरोप का महायुद्ध छिड़ गया ; और लाला हरदयाल, तारकनाथ आदि अमेरिका छोड़ युरोप भाग आए। उनकी विप्लव की सुन्दर योजना इस प्रकार विफल हो गई।

लाला जी पहले कौन्स्टैन्टिनोपल आये और फिर जेनेवा हो कर बर्लिन में अन्यान्य भारतीय विप्लववादियों के साथ आ मिले।

युरोपियन युद्ध आरम्भ होते ही अलीगढ़ ज़िले के एक समृद्ध ज़मींदार श्रीयुत महेन्द्रप्रतापसिंह स्विटज़रलैंड गए। लाला हरदयाल के जेनेवा आने पर महेन्द्रप्रताप के साथ उन की भेंट हुई। लाला हरदयाल जी के साथ वे बर्लिन आ उपस्थित हुए। इस प्रकार महेन्द्रप्रताप भारतीय विप्लव दल में आ मिले।

लाला हरदयाल आदि के चले आने पर अमेरिका के विप्लव दल का भार रामचन्द्र नामी एक विप्लववादी सज्जन पर डाला गया।

इस से पहले ही युरोप में भारतीय विप्लववादी एक दल संगठित कर चुके थे, इस युरोपियन विप्लव दल के नेताओं में डा० चक्रवर्त्ती और श्रीयुत वीरेन चट्टोपाध्याप प्रमुख थे।

ये वीरेन चट्टोपाध्याय हमारे अघोर चट्टोपाध्याय महाशय के पुत्र हैं। श्रीमती सरोजिनी नायडू और "शमा" पत्रिका की वर्त्तमान सम्पादिका श्रीमती मृणालिनी चट्टोपाध्याय इन्हीं वीरेन्द्र की ही बहनें हैं। वीरेन्द्र ने एक धर्मप्राण रोमन कैथोलिक युवती * का पाणिग्रहण किया है किन्तु इन दम्पति में यथेष्ट प्रेम रहने पर भी इन दोनों के ही धर्म-विश्वास इतने दृढ़ थे कि इन में परस्पर इन धर्म-विश्वासों के कारण बड़ी अशान्ति रहती, इसी से अन्त में इन्होंने अलग रहना आरम्भ कर दिया। अब भी इन में से किसी ने दूसरा विवाह नहीं किया, और एक दूसरे से दूर-दूर रहने पर भी इन के प्रेम में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ। वे ही युवती अब भी चट्टोपाध्याय महाशय का सब ख़र्च-भार उठाती हैं।

ख़ैर जो हो, युरोपियन महायुद्ध आरम्भ हो जाने पर अमेरिका और युरोप के विभिन्न विप्लव दलों के नेता जर्मनी में एकत्र हो गये और जर्मन सरकार के राजप्रतिनिधियों के साथ परामर्श करके एक साथ भारत में विप्लव संघटन करने का आयोजन करने लगे।

जर्मनी में जो सब भारतीय विप्लवी इकट्ठे हुए थे उन में से हरदयाल, तारकनाथ, बरकतुल्ला, चन्द्रकुमार चक्रवर्त्ती, हेरम्बलाल गुप्त, वीरेन्द्र सरकार, महेन्द्रप्रताप और चम्पकरामन पिल्लै का नाम हम रौलट कमिटी

---

* उन का नाम है— ग्नेस स्मैड्ले। उन के लेख प्रायः भारतीय पत्रिकाओं में छपा करते हैं।

की रिपोर्ट में देख पाते हैं। चम्पकरामन स्विटज़रलैंड के विप्लव दल के सभापति थे। वीरेन चट्टोपाध्याय का नाम हम ने बहुत बार अनेक काग़ज़ों में देखा है।

पहले हरदयाल आदि कई एक सज्जनों ने जर्मनी के बाहर से सम्भवतः स्टाकहाल्म शहर से एक पत्रिका निकाली। यह पत्रिका निकालने का उद्देश्य था युरोपियन देशों की भारतवासियों के प्रति सहानुभूति प्राप्त करना और अंग्रेज़ किस प्रकार इस बीसवीं शताब्दी में भारत का शासन करते हैं उसका विस्तृत परिचय युरोपवालों को देना। युरोप और अमेरिका में भारत-विषयक ज्ञान के प्रचार करने से कितना लाभ है, आज भी हमारे देश-नायक यह भली प्रकार नहीं समझ सके, क्योंकि यदि वे समझ पाते तो उस तरफ़ अवश्य ध्यान देते।

इस प्रकार अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए प्रचार कार्य में अंग्रेज़ कितना रुपया ख़र्च करते हैं और कैसे विचारशील उपयुक्त व्यक्तियों को इस काम में नियुक्त करते और उनकी कैसी सहायता करते हैं, यह हमारे देश-नायकों की नज़र में अभी तक नहीं पड़ा, इसी से आज भी जब विदेशों में कुछ भारतवासी इस बात का प्रचार करते हैं कि भारतवासी संसार में स्वाधीन होकर ही रहना चाहते हैं तब हमारे अपने देश में देश के नेतागण ब्रिटिश साम्राज्य की महिमा कीर्तन करते हैं। ख़ैर, जाने दो उस बात को।

एक तरफ़ जैसे प्रचार का कार्य चलने लगा दूसरी तरफ़ वैसे ही

भारतवासियों का अस्त्र-शस्त्र जुटवा देने का भी आयोजन आरम्भ हो गया; सब कुछ हुआ पर उचित समय पर कुछ भी न हुआ। चीन के शांघाई शहर में जर्मनी के जो राजप्रतिनिधि (German Consul General) थे, उन्हीं के ऊपर यह अस्त्रादि भिजवाने का सब भार था। फिर ये भी अमेरिका के वाशिंग्टन शहर में जो जर्मन राजप्रतिनिधि थे उन के आदेशानुसार सब काम करते थे। इस प्रकार युरोप और अमेरिका के सभी भारतीय विप्लव नेता जर्मनी के राजप्रतिनिधि और युद्ध-सचिवों की सहकारिता से भारत में विप्लव की आग प्रज्वलित करने का आयोजन करने लगे।

जर्मन के विभिन्न विद्यापीठों में जो सब भारतीय युवक पढ़ते थे, अंग्रेज़ों के साथ युद्ध छिड़ते ही जर्मन गवर्नमेंट ने पहले उन्हें क़ैद कर लिया और पीछे उन में से बहुतों को भारत में विप्लव प्रचार कार्य के लिए सहमत कर लिया और उनके हाथ में भरपूर रुपया दे कर उन्हें भारत भेज दिया, तब भी सम्भवतः युरोप के(भारतीय) विप्लववादियों के साथ जर्मन गवर्नमेंट की कोई बातचीत न हुई थी। इस प्रकार जर्मनी से रुपया ले कर जो देश में आये उन में से प्रायः सभी ने वह रुपया हज़म कर लिया। उन में से केवल दो एक व्यक्तियों ने देश में आ कर विप्लव दल के लोगों के साथ भेंट की। युरोपियन विप्लव दल यदि पहले से ही सतर्क और चेतन हो कर कार्य करता तो ये सब विशृङ्खल घटनायें होने की सम्भावना न रहती। रौलट कमिटी की रिपोर्ट पढ़ कर तो मालूम नहीं होता कि युरोप में

वैसा कोई शक्तिशाली विप्लव दल था, अमेरिका के "ग़दर" दल ने ही युरोप में जा कर जो कुछ हो सका किया।

जो हो, जर्मन एक्स्पर्ट्स (विशेषज्ञों) के साथ परामर्श करके तय हुआ कि बर्मा की सीमा के पास ही भारत में विप्लवप्रयासी युवकों को युद्ध विषयक कुछ-कुछ शिक्षा दे कर बर्मा पर आक्रमण करना होगा और जिस किसी उपाय से हो, विप्लव चलाने के लिए उपयुक्त अस्त्र-शस्त्र भारतवर्ष में विप्लववादियों के हाथ में पहुँचा ही देने होंगे। "ग़दर" दल के कुछ सिक्ख जैसे भारतवर्ष में आये थे वैसे ही और भी बहुत से सिक्ख उस समय अमेरिका, चीन और मलय उपद्वीप में भी थे; इन के द्वारा ही बर्मा पर आक्रमण करने का उद्योग चलता था। उस समय बटेविया (जावा की राजधानी), मनीला (फ़िलपाइन्स की राजधानी), बंगकोक (स्याम की राजधानी) और शांघाई आदि स्थानों में भारतीय विप्लवियों का आना-जाना हरदम जारी था।

इधर जैसे "ग़दर" दल का आयोजन चलने लगा; उधर वैसे ही भारत के दल भी बाहर के विप्लव दल के साथ मिल जाने की यथा-शक्ति चेष्टा करने लगे। सम्भवतः १९१५ ईसवी के फ़रवरी महीने में यतीन बाबू के दल के श्रीयुत भोलानाथ चट्टोपाध्याय बंगकोक गये, किन्तु इन के द्वारा कार्य कितना आगे बढ़ा यह कह नहीं सकता। यतीन्द्रनाथ लाहिड़ी नामक एक युवक के युरोप से आने के बाद ही उन के कथनानुसार यतीन बाबू के दल के नरेन्द्रनाथ अप्रैल मास में पहले बटे-

विया गये, और तभी से असल कार्य आरम्भ हुआ। रासबिहारी भी अप्रैल मास में शांघाई में थे। बटेविया और बंग्कोक का सम्पूर्ण आयोजन शांघाई के जर्मन कौन्सल जनरल के परामर्श से और "ग़दर" दल की सहायता से ही चलता था। बटेविया के "ग़दर" दल के साथ बंगाल के दल का संयोग स्थापित हो गया था।

२२ अप्रैल सन् १६१५ के दिन कैलिफ़ोर्निया के सानपेड्रो बंदर से मैवरिक नामी एक जहाज़ भारत के उपकूल की ओर प्रस्थित हुआ। यह जहाज़ पहले स्टैन्डर्ड आयल कम्पनी का तेल लाने ले जाने के काम आता था, पीछे सान्फ्रांसिस्को की एक जर्मन कम्पनी ने इसे ख़रीद लिया था। चलते समय इस जहाज़ में सब मिलकर २५ कर्मचारी और ५ नौकर बने हुए व्यक्ति थे। ये अपने को ईरानी बतलाते थे, पर थे असल में भारतवासी ही। सान्फ्रांसिस्को के जर्मन कौन्सल और विप्लव दल के रामचन्द्र के उद्योग से ही यह जहाज़ भेजा गया था। बात थी कि आनी लार्सन (Aannie Larsen) नामक एक और छोटा जहाज़ अस्त्रादि ले कर इस मैवरिक के साथ रास्ते में मिलेगा और लार्सन के अस्त्रादि मैवरिक ले लेगा। किन्तु आनी लार्सन समय पर मैवरिक से मिल न सका, इस से विवश हो कर मैवरिक केवल कुछ भारतवासियों और जर्मन एक्स्पर्ट्स (विशेषज्ञों) को ले कर बटेविया आ गया। बटेविया के उच्च अधिकारियों ने मैवरिक की ख़ानातलाशी कराई। किन्तु कोई आपत्तिजनक वस्तु न पा कर मैवरिक को छोड़ दिया। दूसरी

और आनीलार्सन (Annie Larsan) जून महीने के अन्त के क़रीब अस्त्रादि लेकर वाशिंग्टन पहुँचा, किन्तु अमेरिका की सरकार ने वे सब अस्त्रादि ज़ब्त कर लिये, वाशिंग्टन के जर्मन कौन्सल ने उन सब अस्त्रों के लिए दावा किया, पर अमेरिका सरकार ने उसे नामंज़ूर किया। मैवरिक अन्त में बटेविया से अमेरिका लौट आया और उसी में नरेन्द्रनाथ (जिनका वर्तमान नाम मानवेन्द्रनाथ राय—एम. एन. राय है) अमेरिका भाग गये।

हेन्री एस० (Henry S.) नामक एक और जहाज़ अस्त्रादि ले कर मनीला पर्यन्त आ गया, किन्तु वहाँ फ़िलिपाइन के अधिकारियों ने वे सब अस्त्र जहाज़ से उतरवा लिये। इस जहाज़ में बोहेम नामक एक जर्मन सेनापति थे, इन्हीं पर सुनते हैं बर्मा की सीमा के निकट भारतीय विप्लववादियों को सामरिक शिक्षा देने का भार था। ये सिंगापुर में पकड़े गये। जावा के जर्मन कौन्सल के साथ परामर्श करके नरेन्द्रनाथ ने ठीक किया था कि मैवरिक के साथ सब अस्त्रादि बंगाल में रायमंगल के पास उतारे जायेंगे। रायमंगल में भी इस बात का सब आयोजन हो गया था, पर मैवरिक आया नहीं। जुलाई १६१५ में अंग्रेज़ सरकार को सब बातें मालूम हो गईं और उसके फलस्वरूप भारत में धर-पकड़ आरम्भ हो गई।

किन्तु इस के बाद भी रासबिहारी ने फिर देश में अस्त्र भेजने का आयोजन किया। इस आयोजन के अनुसार दिसम्बर १६१५ में भारत में विप्लव आरम्भ होने की बात थी। इस बार का आयोजन इस प्रकार

आशा बिलकुल दुराशा थी उन्हें जान लेना चाहिए कि संसार की इन साम्राज्यकामी गवर्नमेंटों की परस्पर शत्रुता के कारण ही चीन अब तक अत्यन्त बुरी अवस्था में रहने पर भी एकदम असहाय हो कर पराधीनता की जकड़ में नहीं आया, अफ़ग़ानिस्तान, फ़ारिस, तुर्की आदि देश भी इसी प्रकार विभिन्न राजशक्तियों की सहानुभूति और सहायता पा कर ही क्रमशः एक-एक शक्तिशाली जाति के रूप में परिणत होते जाते हैं, पिछले बोअर युद्ध के समय जर्मनी ने बोअरों की अस्त्र-शस्त्र द्वारा कम सहायता नहीं की और अभी पिछले युद्ध के कारण तुर्की की दशा तो एकदम निढाल हो गई है, कमालपाशा ने तो उस समय एक प्रकार से तुर्की गवर्नमेंट के विरुद्ध ही विद्रोह घोषणा करके मित्र शक्तियों के सन्धिपत्र को भी निकम्मा कर दिया, किन्तु ऐसा हो सका फ्रांसीसियों की सहायता से। और फिर आज भी एकदम फ्रांसीसियों पर ही बिलकुल निर्भर न रहना पड़े इसी लिए अमेरिका के साथ अंगोरा की जान-पहचान बनाने की चेष्टा चल रही है।

असल बात यह है कि दुनिया में यदि कोई माथा ऊँचा करके खड़ा हो सके तो उसे सहायता का अभाव नहीं रहता, अन्दर की शक्ति के अभाव से ही सभी लाञ्छनायें होती हैं, अन्दर की दीनता से ही कङ्गाली होती है, "बाहर से दिया ही जा सकता है किन्तु लेना होता है अपने गुण से।"

पाँचवाँ परिच्छेद

बर्मा की कहानी

भारतवासियों के प्रयत्न से ब्रह्मदेश में जो विप्लव की चेष्टा हुई उसके बहुत पहले से ही वहाँ के स्वाधीनता-प्रयासी बर्मियों ने भी बहुत बार विप्लव का आयोजन किया था। अन्डमन में भी इस प्रकार के राजनैतिक अपराधों में दण्डित बहुत से बर्मी थे। युद्ध समाप्त होने के बाद ही उन में से प्रायः सभी को छोड़ दिया गया था। तो भी अंग्रेज़ गवर्नमेण्ट इन सब विप्लव चेष्टाओं को भय की दृष्टि से न देखती थी। जान पड़ता है कि उस का कारण यह था कि यह सब विप्लवान्दोलन एक व्यापक जातीय जागरण का फल न था, इसी से वैसा शक्तिशाली भी न हो सका था। किन्तु भारतीय विप्लववादियों की चेष्टा से बर्मा में भी अत्यन्त निविड़ रूप से विप्लव का आयोजन हो गया था। रौलट रिपोर्ट में लिखा है—"Burma, however has not been altogether free from criminal conspiracy connected with the Indian revolutionary movement. It has been the scene of determined efforts to stir up mutiny

among the military forces and to overthrow the British Government." अर्थात् "बर्मा भी भारत के विप्लवान्दोलन से सम्बद्ध षड्यन्त्रों से बचा नहीं रहा। ब्रिटिश सरकार को उखाड़ डालने और सेनाओं में बलवा खड़ा कर देने की दृढ़ चेष्टाओं की वह रंगस्थली बन चुका है।" किस प्रकार ये दृढ़ चेष्टाएँ—determined efforts हुई थीं उसका कुछ संक्षिप्त परिचय देता हूँ।

गत तुर्की-इटालियन युद्ध के समय भारतवर्ष के मुसलमानों ने एक मैडिकल मिशन, अर्थात् युद्ध में घायलों की सेवा के लिए एक दल, तुर्की भेजा था। इस दल में फ़ैज़ाबाद के निकट अकबरपुर के रहनेवाले अली-अहमद सिद्दीक़ी नामक एक तरुण युवक भी थे; अपने संरक्षकों को पता दिये बिना ही उन्होंने दल में प्रवेश किया था और भारत का तट छोड़ने से पहले घर के लोगों को केवल एक पत्र से जता दिया था कि वे भारतीय मैडिकल मिशन में शामिल हो कर तुर्की जाते हैं।

तुर्की में कार्यवश इन्हें अनवर पाशा के साथ प्रायः चार मास तक समरांगण में ही रहना पड़ा। उस समय इन्होंने अनवर पाशा के जीवन की अनेक रहस्यपूर्ण कहानियाँ सुनीं। तुर्की-इटालियन और तुर्की-ग्रीक युद्ध के समय अंग्रेज़ों की कूट राजनीति की महिमा का तुर्क लोगों ने मर्मान्तिक अनुभव कर पाया था, अंग्रेज़ों की कूटनीति की कहानी, तुर्की के भाग्यनियन्ता उस यंग टर्क (तरुण तुर्क) दल की कहानी, किस प्रकार इस तरुण तुर्क दल ने तुर्की में पहले-पहल अपने को प्रकट किया,

किस प्रकार इस तरुण दल ने मृतप्राय तुर्क समाज में नवचेतना का सञ्चार करके विप्लव पथ में चलते हुए अब्दुलहमीद के समान प्रबल दुर्दान्त और क्रूर सुलतान को पदच्युत करके तुर्की नवीन नियमतन्त्र राज्यप्रणाली का प्रवर्त्तन किया। ये सब बातें, दिन पर दिन, अलीअहमद, अनवर पाशा के पास स्वप्नाविष्ट की तरह एकान्त में तन्मय हो कर सुनते थे। मुस्लिम-जगत् की कितनी ही मर्म-कथाएँ, कितनी ही वीरता की कहानियाँ, कितनी ही मनुष्योचित अभिव्यक्ति की घटनाएँ सुन-सुन कर उनका हृदय मानो एक अननुभूत आनन्द से खिल उठता, मुस्लिम-जगत् के गौरवमय उज्ज्वल भविष्य का चित्र उन्हें अधीर सा कर डालता था। तुर्की के एक सर्वप्रधान युरोप-प्रसिद्ध सेनापति और प्रसिद्ध नेता जो तुर्की के भाग्य-परिवर्त्तन के प्रधान अवलम्ब थे, जब ऐसे एक प्रसिद्ध व्यक्ति भारत के एक नगण्य तरुण युवक के साथ निःसङ्कोच दिल खोल कर बातें करते होते, तब एक ओर जहाँ उन की प्रशस्त उन्नत छाती फूल कर स्पन्दन करने लगती, वहाँ दूसरी ओर वैसे ही उसी एक मुहूर्त में उन का मन भारत की उस हीनता और दीनतापूर्ण जीवन-यात्रा के प्रतिदिन के अपमानों की कहानी स्मरण कर मानो अनजाने में ही घोर अंग्रेज़-विद्वेषी हो उठता, और उन की धमनियों का रक्त नाच-नाच कर दुर्निवार वेग से उन्हें विप्लववादियों के दल में खींच कर ला रखता।

पीछे अलीअहमद आदि कई भारतवासियों ने तुर्की का देश देखने

की इच्छा प्रकट की तो तुर्की के भिन्न-भिन्न स्थानों के राजप्रतिनिधियों ने बड़ा समारोह करके राज-सम्मान के साथ उन्हें अपना सारा देश दिखालाया। इस प्रकार देश में भ्रमण करते समय जब नगर-नगर में तुर्क नर-नारी इकट्ठे हो कर ऊँचे स्वर से जयकार बुलाकर उनका आदर करते, जब राजपथ के दोनों ओर झरोखों में से सुन्दरियों की उत्सुक दृष्टि और उन के हाथों से टपके हुए फूल उन के अंगों पर झड़ पड़ते, तब वे भारतवासी तुर्क देश को भारतवर्ष की अपेक्षा भी सौगुना अधिक अपना समझ कर चाहने लगते। स्वदेश में उन्हें अंग्रेज़ों के नज़दीक जो सलूक मिलता उसके साथ वे इन तुर्कों के व्यवहार की तुलना किए बिना न रह सकते, इस प्रकार अलीअहमद विप्लव मन्त्र में दीक्षित हुए, और अन्य अनेक भारतवर्षीय मुसलमानों की तरह अलीअहमद भी तरुण तुर्क (यंग टर्क) दल में शामिल हो गये।

इसी तुर्की-इटालियन युद्ध के समय पंजाब के एक और युवक, अबूसैयद, रंगून से ईजिप्ट गये और फिर ईजिप्ट से तुर्की आये। इन्हीं अबूसैयद के अनुरोध और प्रस्ताव से तरुण तुर्क दल के एक सदस्य, ताफ़िक बे को सन् १९१६ में रंगून भेजा गया। रंगून के एक मुसलमान व्यवसायी अहमद मुल्ला दाऊद को ताफ़िक बे तुर्की का कौन्सल नियुक्त करा गये। पिछले युद्ध के समय यह मुल्ला दाऊद ही तुर्की के कौन्सल रूप में रंगून में थे।

बलक़ान युद्ध समाप्त हो जाने पर अथवा युरोपीय युद्ध आरम्भ हो

जाने के बाद अलीअहमद देश में लौट आये और कुछ दिन घर पर रह कर अपनी स्त्री के आभूषण आदि बेच कर कुछ थोड़ा रुपया ले अपना व्यापार करने के लिए रंगून चले आये। कौन्स्टैन्टिनोपल से क़ायमअली नामक एक और भारतीय मुसलमान को तुर्क लोगों ने दिसम्बर सन् १६१४ में तरुण तुर्क दल का प्रतिनिधि बनाकर रंगून भेजा। क़ायमअली और अलीअहमद सिद्दीक़ी दोनों ने रंगून आ कर परस्पर मिलने के बाद तुर्कों के नेतृत्व में बर्मा में विप्लव-षड्यन्त्र आरम्भ कर दिया। कुछ ही दिनों में इन्होंने स्थानीय मुसलमानों के पास से १५ हज़ार रुपया चन्दा जमा कर लिया। इस चन्दा करने के सम्बन्ध में एक बात यहाँ कहे बिना नहीं रह सकता, वह यह कि बंगाल के सम्पन्न व्यक्ति विप्लवादियों की धन से ज़रा भी सहायता न करते थे, इसी से बंगाल में राजनैतिक डकैती का प्रादुर्भाव अनिवार्य हो गया था।

एक ओर यदि ये पैन-इस्लामिक (विश्व-इस्लामिक) दल के मुसलमान विप्लव का आयोजन करते थे, तो दूसरी ओर अमेरिका का "ग़दर" दल भी निश्चेष्ट न था। खेमचन्द दामजी नामक एक गुजराती सज्जन किसी समय रंगून से अमेरिका गये और अमेरिका में आते ही वहाँ के ग़दर दल में सम्मिलित हो गये। पहले-पहल इन्हीं खेमचन्द की सहायता से केवल बर्मा में 'ग़दर' पत्रिका भेजी जाया करती थी, युद्ध के समय यह पत्रिका गुजराती, हिन्दी और उर्दू तीन भाषाओं में छापी जाती थी। युरोप के युद्ध के कारण बर्मा के मुसलमान लोग भी उत्तेजित हो उठे

थे और इस 'ग़दर' पत्रिका के प्रभाव से उत्तेजना का स्रोत क्रमशः बढ़ता गया। इसी समय बम्बई में त्रिलोची पल्टन के एक सैनिक ने अपने अंग्रेज़ अफ़सर की हत्या कर डाली, जिससे इस सेनादल को फिर युरोप न भेज कर रंगून में रोक रक्खा गया। रंगून के मुसलमान 'ग़दर' अख़बार के सहारे इस सेना में विप्लव की बातों का प्रचार करते रहे; फलतः जनवरी १९१५ तक यह सेनादल खुल्लमखुल्ला विप्लव आरम्भ करने को उद्यत हो गया, किन्तु समाचार का आभास-मात्र मिलते ही सेनापतियों ने इस दल को कठोर दण्ड दिये। २०० बिलोचों को भारत की भिन्न-भिन्न जेलों में भेज दिया।

इस समय सिंगापुर में दो रेजिमेन्टें थीं उन में से एक के साथ बर्मा के मुसलमान विप्लवी दल का जोड़-तोड़ हो गया। सिंगापुर के क़ासिम-मंसूर नामी एक गुजराती मुसलमान ने रंगून में अपने पुत्र को पत्र लिखा, उसमें तुर्की के जो कौंसल रंगून में थे उनके नाम भी एक पत्र था। उस पत्र में लिखा था, सिंगापुर का एक सेनादल विद्रोह करके तुर्की का साथ देने को तैयार है और इस समय तुर्की का एक लड़ाऊ जहाज़ सिंगापुर में आना आवश्यक है। यह पत्र अंग्रेज़ों के हाथ लग गया और सिंगापुर की उस रेजिमेंट को दूसरी जगह भेज दिया गया।

इसी बीच अमेरिका के 'ग़दर' दल के लोग भी सिंगापुर में आ उपस्थित हुए। इन्होंने एक ओर जहाँ उसी सिंगापुर की दूसरी सेना के बीच प्रचार आरम्भ कर दिया, वहाँ दूसरी ओर बर्मा में भी अपने

आदमी भेजे। सन् १६१५ के आरम्भ में ही सोहनलाल पाठक और हसन खाँ नामक गदर दल के दो व्यक्तियों ने बंगकोक से रंगून आ कर अपना केन्द्र स्थापित कर दिया। यहाँ एक बात ग़ौर करने की है कि "ग़दर" दल में मुसलमानों को भी लिया जाता था किन्तु मुसलमान विप्लव दल में हिन्दुओं के लिए स्थान न था।

सिंगापुर की सेना में प्रचार करने का फल यह हुआ कि इस बार सचमुच ही विप्लव आरम्भ हो गया। यद्यपि इस सिंगापुर के विप्लवायोजन के साथ पंजाब के विप्लवायोजन का कोई भी सम्बन्ध न था, तो भी आश्चर्य की बात है कि २१ फ़रवरी सन् १६१५ को सिंगापुर में विप्लव शुरू हुआ और पंजाब में भी ठीक यही २१ फ़रवरी विप्लव शुरू करने की तिथि निश्चित हुई थी। इस २१ फ़रवरी के दिन सिंगापुर के सैनिक बहुत दिनों के संस्कारों को तोड़ कर खुलमखुल्ला अंग्रेज़ों के विरुद्ध खड़े हो गये। एक सप्ताह के लिए सिंगापुर भारतीय सेना के हाथ में हो गया, किन्तु सिंगापुर भारत के बीच में न था इस से वह विप्लव की आग चारों तरफ़ फैल न सकी, और एक सप्ताह के बाद रूसी, जापानी और अंग्रेज़ों के लड़ाऊ जहाज़ों ने आ कर सिंगापुर को घेर लिया। इस एक सप्ताह भर विप्लवियों ने स्थानीय अंग्रेज़ी सेना के साथ योग्यता से युद्ध किया था, और अंग्रेज़ी सेना को उस युद्ध में हार भी माननी पड़ी थी। किन्तु रूस, इंग्लैण्ड और जापान के जंगी जहाज़ आ जाने पर दो-एक दिन की लड़ाई के बाद अन्त में

बाध्य हो कर विप्लवियों को भागना पड़ा। विप्लवियों ने वनों-जंगलों में जा कर आश्रय लिया, जो भाग न सके, वे वहीं अंग्रेज़ों के हाथ बन्दी हो गये। सिंगापुर से भाग कर एक ही बार छुटकारा पाने का भी कोई उपाय न था, इस लिए, कुछ ही दिनों में प्रायः सभी विप्लवी पकड़े गये—अंग्रेज़ी अख़बारों में छपा, सिंगापुर में एक दंगा हो गया, किन्तु अंग्रेज़ गवर्नमेण्ट और भारतीय विप्लव दल दोनों ही की समझ में निःसंशय रूप से आ गया कि विप्लवियों का देशी सिपाहियों को हाथ में कर लेना कुछ वैसी कठिन बात नहीं है।

सिंगापुर की दुर्घटना के बाद "ग़दर" दल के दो-एक बचे हुए व्यक्ति बर्मा चले आये और पूरे उद्यम से फिर वे देशी सेना में विप्लव की बात का प्रचार करने लगे। एक तरफ़ जैसे बर्मा के सेनादल में विप्लव प्रचार चलने लगा। दूसरी तरफ़ वैसे ही बर्मा के सीमान्त पर स्याम में भी जर्मनों की सहायता से विप्लव का आयोजन होता रहा। उत्तर स्याम प्रदेश में जर्मन इञ्जीनियरों की अधीनता में एक रेलवे लाइन तैयार होती थी। इस कार्य में अधिकांश सिक्ख और मज़दूर पंजाबी ही थे। इसी रेलवे लाइन की दिशा से बर्मा पर आक्रमण करने की योजना चलने लगी। अमेरिका, चीन आदि देशों से लौटे हुए सिक्ख और पंजाबी यहीं स्याम के सीमान्त में इकट्ठे होने लगे।

शिवदयाल कपूर नामक एक सिक्ख (पंजाबी?) अमेरिका से लौटते समय शांघाई आये। शांघाई के एक जर्मन ने इन्हीं की मार्फ़त बहुत सा

रुपया बंगकोक के जर्मन कौन्सल के पास भेजा। इस रुपए का कुछ अंश बर्मा जाने वाले सिक्खों की ख़ातिर ख़र्च हुआ और बाक़ी बंगकोक के एक बंगाली वकील की मार्फ़त बंगाल के विप्लवियों के पास भेजा गया। कहते हैं, इसी बंगाली वकील ने, यह सब विप्लवायोजन की बात अन्त में अंग्रेज़ गवर्नमेण्ट के सामने खोल दी। जो विप्लवायोजन युद्ध छिड़ने से बहुत पहले से ही करना उचित था जब वही आयोजन युद्ध के समय में बड़ी दौड़-धूप में किया गया, तब ऐसे अपदार्थ जीवों से भी काम लेना आवश्यक हो गया। न जाने किस की सिफ़ारिश पर इस बंगाली वकील को इस काम पर लगाया गया था। जो भी हो, इस प्रकार विदेश की विप्लव योजना विफल हुई।—किन्तु बर्मा के कार्यकर्त्ताओं ने एक बार और विप्लव की चेष्टा कर देखी।

सोहनलाल पाठक और नारायणसिंह ये दो जने एक बार फिर बर्मा में विभिन्न स्थानों की छावनियों में जा कर सिपाहियों के बीच विप्लवमन्त्र का प्रचार करने लगे। सोहनलाल बर्मा के एक गोलन्दाज़ सिपाहियों के दल में अंग्रेज़-विद्वेष फैलाने लगे, अंग्रेज़ों की तरफ़ रह कर प्राणों की बलि देने में कुछ भी सार्थकता नहीं है, यही बात उन्हें समझाने लगे। यदि प्राण देने ही हों तो स्वदेश और स्वधर्म के लिये प्राण देने का कितना महान् गौरव है, यह भी सिपाहियों को समझाने लगे। सिपाहियों द्वारा भले ही उन का कोई अनिष्ट न हुआ किन्तु सिपाहियों के एक जमादार ने एक दिन सोहनलाल को पकड़ लिया।

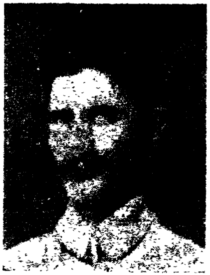
उस दिन उस जगह उस जमादार और सोहनलाल के सिवाय और कोई नहीं था। सोहनलाल की जामे की पाकेट में तब दो तीन रिवाल्वर और भरपूर गोलियाँ भी थीं, किन्तु क्या जाने सोहनलाल उस घड़ी किस स्वप्न की ख़ुमारी में थे कि उस दिन रिवाल्वर की सहायता से उन्होंने उस प्राणघाती जमादार के हाथ से मुक्ति पाने की कोई चेष्टा ही नहीं की। उस दिन ऐसी अवस्था में सोहनलाल के मुँह से केवल कुछ ऐसे ही शब्द निकले थे—"अरे भाई! तू मुझे पकड़ा देगा? तू क्या भूला जाता है कि मैं तेरा भाई हूँ? भाई हो कर भाई को पकड़ा देगा? भाई को पकड़ा देने में तुझे क्या कुछ भी दर्द नहीं होता? अरे, तू कैसा भाई है, भाई हो कर भाई को पकड़ाए देता है?" लेकिन जमादार सोहनलाल को खींच ही ले चला। यह सच है कि सोहनलाल बहुत बलिष्ट न थे किन्तु यह बात भी सच है कि कोई भी आदमी दूसरे एक आदमी को किसी और की सहायता बिना पूरी तरह क़ाबू नहीं कर सकता, चाहे वह कितना ही बलवान् व्यक्ति क्यों न हो। असल बात यह है कि सोहनलाल ने उस स्वार्थान्ध जमादार के उपर ज़रा भी शारीरिक बल का प्रयोग नहीं किया। इस प्रकार अंग्रेज़ों के पंजे में पड़ने का अर्थ उन के सामने ख़ूब सुस्पष्ट था, इच्छा होती तो वे उस प्राणलोलुप जमादार के हाथ से, रिवाल्वर की सहायता से घड़ी भर में छुटकारा पा सकते थे। किन्तु न जाने भगवान् ने उन के मन को उस घड़ी किस दिव्य लोक में भेज दिया था—वे मानो उस दिन इस संसार में एकदम थे ही नहीं।

सोहनलाल जेल में डाले गये सही, किन्तु जेल के किसी नियम का पालन वे न करते थे। जेल के अधिकारी जेल के परिदर्शन के लिए आते तो सारे क़ैदी जिस प्रकार आईन के मुताबिक़ उनको सम्मान दिखलाते थे, सोहनलाल वैसा न करते। वे कहते—मैं अंग्रेज़ों के राजत्व को ही जब अन्याय और अत्याचार मानता हूँ तब अंग्रेज़ों की जेल के नियमों का ही क्यों कर पालन करूँ ?" जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट अथवा जेलर उन के सम्मुख आते तो वे और सब की तरह सम्मान के लिए उठ कर खड़े न होते, इसी से जब बर्मा के लाट साहब सोहनलाल के पकड़े जाने के ठीक बाद ही जेल का परिदर्शन करने आये, तब जेलर साहब ने अत्यन्त सङ्कोच के साथ सोहनलाल से अनुरोध किया कि वे कम से कम लाट साहब को तो सम्मान दिखायें, किन्तु वे इस पर सम्मत न हुए। किन्तु ऐसे निर्भीक और आत्ममर्यादा पर इस प्रकार सुप्रतिष्ठित होते हुए भी सोहनलाल मनुष्य के साथ मनुष्य की तरह व्यवहार करते थे, कभी किसी प्रकार की अभद्रता नहीं दिखाते थे। कोई उनके साथ बात करने आवे तो वे भद्रतापूर्वक यथोचित सम्मान कर के उस से बात करते। कोई उन के साथ खड़ा हो कर बात करे तो वे भी खड़े हो कर बात करते। इसी से लाट साहब के सोहनलाल के पास आने से ठीक पहले जेलर सोहन के पास आकर खड़े हो कर बात करने लगे। इसी लिए लाट साहब के आने पर नये सिरे से उन्हें खड़ा नहीं होना पड़ा, और इस प्रकार जेलर ने अपनी और लाट साहेब की मर्यादा की उस बार रक्षा की।

लाट साहब ने प्रायः दो घंटा सोहनलाल के साथ वार्तालाप किया। लाट साहब ने सोहनलाल से बड़ा अनुरोध किया कि वे क्षमा माँग लें; लाट साहब ने कहा कि वे केवल एक बार क्षमा की प्रार्थना कर दें, बस, उनकी प्राण दण्ड से रक्षा हो जायगी। सोहनलाल ने लाट साहब को भली प्रकार समझा कर कहा कि इस समय जो कुछ अन्याय या ज़ोर-ज़ुल्म हो रहा है, सब अंग्रेज़ों की तरफ़ से ही हो रहा है, अंग्रेज़ों ने केवल डंडे के ज़ोर से इस देश पर दख़ल किया है और डंडे के ज़ोर से ही इस देश में शासन कर रहे हैं, इस लिए क्षमा प्रार्थना यदि किसी को करनी चाहिए तो लाट साहब को ही,—सोहनलाल ने यह सब बात लाट साहब को समझनी चाही।

फाँसी होने के दिन जब सोहनलाल को फाँसी के तख़्ते पर खड़ा किया गया तब भी एक अंग्रेज़ मैजिस्ट्रेट ने उन्हें फिर एक बार समझाया कि अब भी यदि वे केवल मुँह से क्षमा प्रार्थना कर लें तो एक दम उनकी प्राण दण्ड से रक्षा हो सकती है। इन अंग्रेज़ अधिकारी ने सोहन से कहा कि उन के पास आदेश आया है कि अन्तिम बार एक दफ़ा फिर सोहन से क्षमा-भिक्षा करने के लिए अनुरोध किया जाय। जीवन और मरण के सन्धिस्थल में खड़े सोहनलाल के मुँह की ओर जेल के कर्मचारी और राज्याधिकारी अवाक् हो कर ताक रहे थे। सोहन-लाल धीरे-धीरे मुस्कराने लगे और अनायास ही बोले—"क्षमा माँगनी हो तो अंग्रेज़ हम से क्षमा माँगें, मैं किस लिए तुम्हारे पास क्षमा माँगने

सरदार सोहनलालजी पाठक



क्षमा माँगनी हो, अंग्रेज़ हम से माँगें।

पिंगले



आऊँगा ?" अंग्रेज़ राज्याधिकारी ने फिर भी सोहन से बड़ा अनुरोध किया, अनेक प्रकार समझाया कि वृथा प्राण दे कर कुछ लाभ नहीं होगा। अन्त में सोहनलाल कुछ सोच कर बोले—"देखो, यदि मुझे बिलकुल छोड़ दो और यदि मैं इच्छानुसार चला जा सकूँ तो क्षमा प्रार्थना करने को प्रस्तुत हूँ।" अंग्रेज़ राज्याधिकारी ने दुःखित हो कर कहा, वैसा कोई अधिकार उन के हाथ में नहीं है। सोहनलाल ने कहा—"तो और ज़रा भी देर न करो, अपने कर्त्तव्य का पालन करो, और मुझे भी अपना कर्त्तव्य पूरा करने दो।"

सोहनलाल को फाँसी हो गई।

बर्मा के मुसलमान विप्लववादियों ने फिर बक़रीद के समय विप्लव का आयोजन किया। किन्तु आयोजन पूरा न होने से विप्लव का दिन २५ दिसम्बर तक हटा दिया गया। बर्मा की मिलटरी पुलिस की एक बारक में रिवाल्वर, डिनामाइट आदि बहुत सी चीज़ें पकड़ी गई, और उसके बाद बर्मा के सब सन्देहजनक व्यक्तियों को डिफ़ेंस आफ़ इन्डिया ऐक्ट के अनुसार नज़रबन्द कर दिया गया। उस के बाद बर्मा में कोई उपद्रव नहीं हुआ है।

छठा परिच्छेद

परिणाम

विप्लवियों की सभी चेष्टायें बार-बार व्यर्थ हुईं, उसका फल यह हुआ कि स्वदेश में और विदेश में भिन्न-भिन्न राजशक्तियों की चक्की में पिसते हुए उनकी लाञ्छनाओं की अवधि न रही। स्वदेश की तो बात ही नहीं, विदेश में भी वे एक देश से दूसरे देश को मारे-मारे फिरने लगे और स्वदेश में "भारत रक्षा आईन" के ज़ोर पर ज़रा-सा सन्देह होते ही दल के दल युवकों को जेलों में या गाँवों की नज़रबन्दी में ठेल दिया जाता। जिन के विरुद्ध तनिक-सा भी प्रमाण पाया गया, उन्हें अंग्रेज़ सरकार के हाथ कठोर दण्ड भोगना पड़ा। अनेकों ने फाँसी के तख़्ते पर जीवन दिया, बहुतों को कालापानी हुआ। पुलिस का उत्पात या जेल की कठोरता न सह सकने पर कई युवकों ने आत्महत्या का आश्रय लिया, इन सब करुण-कथाओं ने कितने ही तरुण युवकों की माताओं के दिल निष्ठुरता से टुकड़े-टुकड़े कर डाले। विप्लव दल प्रायः छिन्न-भिन्न हो गया। विप्लवियों के नेता या तो जेल में डाले गये, या

फाँसी के तख़्ते पर चढ़े। विप्लव दल जब इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो कर देश के चारों ओर बिखर गया तब अनेक स्थानों पर पुलिस के साथ उन के जो सब संघर्ष हुए, विप्लव युग के इतिहास में वे स्मरणीय रहेंगे।

पंजाब के विप्लवान्दोलन की गम्भीरता और व्यापकता जब प्रकट हो गई, तब गवर्नमेंट जान गई कि इस विप्लव दल की अब किसी प्रकार अवहेलना करने से काम न चलेगा। भारत के प्रवीण विज्ञ और राजनीतिविशारद नेता लोग देर से यह बात कहते आते थे कि भारत का यह विप्लव-प्रयास बिलकुल लड़कपन है—किन्तु अंग्रेज़ गवर्नमेंट यह बात अच्छी तरह जान गई थी कि इन विप्लवियों को यदि कुछ दिन भी निर्विघ्न रूप से अपने मतलब के अनुसार काम करने का अवसर और सुयोग मिल जाय तो भारत की अवस्था में सचमुच एक अभूतपूर्व परिवर्तन हो जायगा। भारतीय विप्लववादियों के लिए क्या कुछ कर डालना सम्भव है, इसकी अंग्रेज़ गवर्नमेंट जैसी कल्पना करती थी, भारत के राजनीतिज्ञ नेताओं ने वैसी कल्पना कभी नहीं की। अन्डमन जाने से पहले कुछ ऊँचे अंग्रेज़ अधिकारियों के साथ मेरी इस विषय में अनेक बार बातचीत हुआ करती थी। इन की बातचीत से मैं समझ पाया था कि गवर्नमेंट भारत के भिन्न-भिन्न आन्दोलनों में से एकमात्र विप्लवान्दोलन को चिन्ता करने लायक़ गिनती थी, इसी से इस गवर्नमेंट में जो कुछ ज़हर था, इन्हीं विप्लवियों पर उसका प्रयोग किया गया। इसी से पंजाब के विप्लव आन्दोलन का पता लगते ही भारत-सरकार ने

भारत के मंगल के लिए "भारत रक्षा आईन" के समान अत्यन्त कठोर शासन-प्रणाली जारी कर दी।

इतिहास में जो चिरकाल से होता आता है, भारत की बारी में भी उससे उलटा नहीं हुआ। जब कोई पराधीन जाति जागने लगती है तब उस जागरण को व्यर्थ करने के लिए ऐसी ही कठोर शासन नीति जारी की जाती है। किन्तु जाति जब सचमुच जाग उठती है तब संसार की कोई भी कठोर नीति उस जागरण को व्यर्थ नहीं कर सकती, वरन् इस तरह की कठोर दमन नीति के द्वारा जाति की केवल शक्ति-परीक्षा होती है। जाति में यदि सचमुच कुछ प्राणों की शक्ति हो तो यह सब कठोरता जागृति की रुकावट न हो कर सहायक हो जाती है। इसी से जागरण के दिन राजकोप को वास्तव में कोप न समझकर भगवान् का अनुग्रह समझना ही उचित है। भारत के विप्लवियों ने भी सचमुच कभी भी इस दमन नीति के लिए अंग्रेज़ों को दोषी नहीं ठहराया, प्रत्युत वे तो यह सोचते थे कि इन सब कठोरताओं में से गुज़ार कर भगवान् जाति को पुनरुज्जीवित करने के लिए आह्वान करते हैं। वे जानते थे कि पराधीन जाति का स्वाधीनता-प्रयास इन सब कठोरताओं में से गुज़र कर ही सार्थक होता है। सभी दमन नीति मानो एक प्रकार के मीलों के पत्थर (Milestone) हैं। कौन पराधीन जाति स्वाधीनता प्राप्ति के पथ में कितनी आगे बढ़ी है यह सब दमन नीति ही मानो उस का परिचय देती है, भारतीय विप्लववादी यही विश्वास करते थे। इसी

विश्वास के कारण वे सब दुःख-लाञ्छनायें प्रफुल्ल वदन से सह सके, प्राणों के बलिदान से ही जाति में प्राणों का संचार होता है, इसी विश्वास से वे प्राणों की बलि देने से भी घबराते न थे।

डिफ़ेंस आफ़ इण्डिया ऐक्ट जारी होने के बाद से समरी ट्रायल्स (संक्षिप्त मुक़द्दमे) आरम्भ हो गये। बारी-बारी से पंजाब में तीन षड्यन्त्र के मामलों का विचार हुआ। प्रत्येक मामले में ६०—७० आसामी थे। इन सब मुक़द्दमों के फल-स्वरूप पंजाब में एक साथ २८ व्यक्तियों को फाँसी हुई। मेरठ पल्टन में ११ व्यक्तियों को फाँसी हुई, सातवीं राजपूत सेना में से कई व्यक्तियों को सम्भवतः दिल्ली में फाँसी हुई। जिन्हें फाँसी न हुई, उन्हें प्रायः सभी को कालापानी हुआ। ऐसी अवस्था के बाद भी पंजाब के बचे हुए विप्लवियों के बीच फिर विप्लव की योजना चलने लगी। कुछ अकाली दल इन सब क़ैदी विप्लवियों को जेल से छुड़ाने के इरादे बाँधने लगे। सिक्खों के एक और दल ने अस्त्र-शस्त्र की ओर ध्यान दिया। उन दिनों बड़े-बड़े रेलवे स्टेशनों पर और बड़े-बड़े पुलों के नीचे हथियारबन्द सिपाहियों का पहरा रहता था। एक बार विप्लवियों के एक छोटे से दल ने, जान पड़ता है, केवल ७-८ व्यक्तियों ने मिल कर अमृतसर के पुल के सिपाहियों पर यकायक हमला कर दिया। वहाँ १५ सिपाही, १५ मैगज़ीन राइफ़लें और प्रायः ७५० कारतूस थे। ७, ८ पिस्तौलधारी सिक्खों ७५० कारतूस समेत १५ की १५ रायफ़लें छीन ले गये। किन्तु उस समय दल की कुछ अच्छी विधि-व्यवस्था न रहने से थोड़े दिनों में ही

बन्दूकों समेत ५ विप्लवी पकड़े गये। उन पाँचों को फाँसी हुई। इस से पहले ही २८ व्यक्तियों को फाँसी हो चुकी थी। इन्हें फाँसी होने के बाद भी फिर से कुछ सिक्ख स्कूल मास्टरों ने मिल कर विप्लव की धारा को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा की, सम्भवतः उसका सिलसिला आज भी चलता होगा। डा० मथुरासिंह आदि कई विप्लवी भारत त्यागने के बाद अफ़ग़ानिस्तान में से हो कर फ़ारिस में और मेसोपोटामिया की भारतीय सेनाओं में विप्लव की बातों का प्रचार करते रहे। एक बार घटनाक्रम से डा० मथुरासिंह भारत और अफ़ग़ानिस्तान के सीमान्त प्रदेश में पकड़े गये। उन्हें भी फाँसी हुई। जो इस प्रकार फाँसी और कालापानी से बच पाये उन में से अनेकों को इन्टर्नमेंट (नज़रबन्दी) भोगनी पड़ी। उस युग में बंगाल और पंजाब जितनी इन्टर्नमेंट और किसी प्रान्त में नहीं हुई, और कालापानी और फाँसी उस बार पंजाब में ही और सब प्रान्तों की अपेक्षा अधिक हुई।

युक्त प्रदेश में भी बनारस षड्यन्त्र मामले के बाद मैनपुरी को केन्द्र बनाकर प्रायः एक बरस भर में ही फिर एक बड़ा विप्लव दल उठ खड़ा हुआ। इस विप्लव दल की बात भी प्रायः दो-एक बरस के बीच ही प्रकाशित हो गई। इस प्रसंग में एक बात कह देना चाहता हूँ; रूस में प्रायः कोई भी विप्लवी दो मास से अधिक समय तक अप्रकाशित रूप से काम न कर पाते थे। दो महीने के अन्दर ही या तो वे राज्य से दण्ड पा जाते थे, या उन्हें देश छोड़ कर विदेश का आश्रय लेना पड़ता

था। भारतवर्ष में अब तक प्रायः देखा गया है कि यहाँ विप्लवियों का कार्यकलाप और उन का परिचय दो बरस से अधिक समय गुप्त नहीं रह पाता।

बंगाल में उस समय फाँसी और कालापानी की अपेक्षा नज़रबन्दी ही अधिक हुई। इन नज़रबन्दियों के कारण बंगाल का विप्लव दल बहुत कुछ टूट गया, तब यह विप्लव दल भिन्न-भिन्न भागों में बँट कर देश भर में बिखर गया। उस समय यदि विप्लवियों के हाथ में उपयुक्त परिमाण में अस्त्र-शस्त्र रहते तो वे सरकार का राज्य चलाना असम्भव कर डाल सकते थे।

उस समय तक रासबिहारी काशी में ही थे। एक दिन केन्द्र से संवाद आया कि बंगाल के प्रसिद्ध विप्लवनेता श्रीयुत यतीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को अज्ञातवास में रहना होगा, और उन्होंने काशी में आ कर रहने की इच्छा प्रकट की है। हम ने परामर्श करके देखा कि उन्हें काशी में बेखटके रखना कुछ ऐसी कठिन बात नहीं है; किन्तु हम ने यह भी देखा कि काशी के बाहर उनके दल की भूल-चूक के कारण काशी पर भी विपत्ति आ सकती है। जिस दल की प्रत्येक विधि-व्यवस्था अपने नियन्त्रण के अधीन हो उसकी भूल-चूक के लिए दायित्व लिया जा सकता है, और उस अवस्था में भूल-चूक पकड़ना और उसका संशोधन करना भी अपनी ताक़त में होता है। किन्तु जिस दल की विधि-व्यवस्था के ऊपर अपना कोई हाथ नहीं, उसकी भूल-चूक पकड़ने का

सुयोग कहाँ होता है ? यह सच था कि बंगाल के बहुत से क्षुद्र-क्षुद्र दल यतीन बाबू के नेतृत्व के अधीन सम्मिलित हो गये थे, किन्तु वे पूर्व बंगाल की अनुशीलन समिति के साथ अथवा चन्दननगर के विप्लवियों के अर्थात् रासबिहारी के साथ सम्मिलित न हुए थे, और न होने की कोई चेष्टा ही करते थे, जापान जाने से पहले रासबिहारी ने उन के साथ भेंट करने की बहुत चेष्टा की, किन्तु जिस किसी कारण से हो, भेंट न हो सकी। ख़ैर, जो भी हो, जब यतीन बाबू के काशी आने की बात चली तब हम ने सब तरफ़ देख-भाल कर उन्हें काशी में रखने का भार लेना स्वीकार कर लिया, किन्तु क्या जाने क्यों उन्होंने ख़ुद ही काशी न आना ही तय किया।

उस समय भी यतीन बाबू कलकत्ता छोड़ कर गये नहीं। एक दिन वे अपने पाथुरियाघाट वाले एक मकान पर आये हुए थे। वहाँ और भी कई प्रकार विप्लवी थे। उस समय उसी घर में घटनाक्रम से थोड़े दिनों का परिचित एक आदमी आ उपस्थित हुआ। इस आदमी पर वे गुप्तचर होने का सन्देह करते थे, इसी से भली प्रकार आगे-पीछे देख-भाल करने से पहले ही विप्लवियों में से एक ने इस थोड़े दिन के परिचित आदमी को देखते ही गोली दाग दी। सुविधा होती तो यतीन बाबू को गवर्नमेन्ट निश्चय से पकड़ लेती। यतीन बाबू को बचाने की ख़ातिर ही सम्भवतः इन युवक ने इस प्रकार गोली दाग दी थी। यह बात सच है कि यतीन बाबू ने गोली नहीं मारी किन्तु इस व्यक्ति ने डाइंग डिक्लेरेशन (मरते

समय के इज़हार) में यतीन बाबू के नाम पर ही गोली मारने का अभियोग लगा दिया। इस प्रकार यतीन बाबू के नाम पर फाँसी का परवाना लटकने लगा। जब उस व्यक्ति को गोली ही मारनी थी तब फिर डाइंग डिक्लेरेशन देने का सुयोग क्यों दिया गया, यह कह नहीं सकता।

लाचार यतीन बाबू को दूसरी जगह जाना पड़ा। यतीन बाबू के लिए एक निरापद स्थान ठीक हुआ, वहाँ जाने का समय आया तो यतीन्द्रनाथ अपने साथियों से कह उठे, "जब तक मैं भली भाँति न जान लूँ कि तुम ने और सब के लिए भी ऐसे ही निरापद स्थान ठीक कर रक्खे हैं, जैसा मेरे लिए किया है, तब तक मैं तुम्हारा यह बन्दोबस्त मान नहीं सकूँगा, हम सब बरख़ास्त किये हुए सिपाही हैं, हर घड़ी मृत्यु का आदेश सुनने की प्रतीक्षा में हैं, इसी लिए सभी एक संग रहना चाहते हैं, जिस से एक effective struggle (प्रभावशाली मुटभेड़) की जा सके, which will create a moral impression जिससे जनता पर एक नैतिक प्रभाव हो सके।

अन्त में उन की इच्छानुसार ही व्यवस्था हो गई, जिस से वे लोग पाँच व्यक्ति बालेश्वर के निकट एक अड्डा बना कर रहने लगे। इधर विप्लवान्दोलन भी बन्द नहीं हुआ। दूर बालेश्वर में रहते हुए भी यतीन्द्र बाबू विप्लवकार्य की परिचालना करते थे। यदि विप्लवी लोग उधर भाग कर फिर से विप्लव के कार्य में ध्यान न दे कर निश्चेष्ट हो कर केवल अपने को गुप्त रखने का ही ख़याल

करते तो मालूम होता है, कोई भी विप्लवी पकड़ा न जाता। विप्लवी लोग अपने को गुप्त रख कर भी बराबर विप्लव कार्य में लिप्त रहते थे, इसी कारण वे बार बार विपत्ति में पड़ते थे। किन्तु केवल प्राण बचाना ही तो विप्लवियों का उद्देश्य न था। जीवन यदि देश के काम में न लगा तो जीवन बना रहने से क्या बनेगा, यही थी विप्लवियों की धारणा। उधर पूर्व परिच्छेद में उल्लिखित उसी बंगकोक के वकील ने जब विप्लवायोजन के सब सम्वाद सरकार के पास खोल दिये तब उसी सिलसिले में कलकत्ते में और कुछ धर-पकड़ हुई। इसी सूत्र से फिर यतीन्द्रनाथ के अड्डे का सम्वाद भी पुलिस को मिल गया। यतीन्द्रनाथ को भी पता लग गया कि पुलिस को उन का सुराग़ मिल गया। वे चाहते तो उसी समय भाग सकते थे, पर तुच्छ प्राणों के डर से यतीन्द्रनाथ भागना न चाहते थे। उद्देश्यसिद्धि के लिए यदि उन्हें दूसरी जगह जाना होता तब भी वे अपने साथियों को छोड़ कर भागने को राज़ी न थे। वे अपने साथियों के जीवन और अपने जीवन में कोई भेद न देखते थे। इसी से तय हुआ कि सभी एक संग ही जायेंगे किन्तु उन के साथियों में से दो उस समय बारह मील दूर घने जंगल में थे। उन को किसी प्रकार भी छोड़ कर जाना नहीं हो सकता। यतीन्द्रनाथ अपने दूसरे संगियों को ले अँधेरी रात में पहाड़ी रास्ते से जंगल के बीचोबीच अपने साथियों को लाने के लिए चल पड़े। अपरिचित रास्ते पर बारह मील रास्ता तय कर के फिर बारह मील वापस आ कर

दूसरी जगह जाना असम्भव था। तब भी यतीन्द्रनाथ का हृदय इसे असम्भव कह कर रह नहीं सकता था। असाध्यसाधन ही उन के जीवन का व्रत था—उस दिन भी उस असाध्यसाधन में ही वे अग्रसर हुए। लौटते हुए रात बीत गई। उस समय जंगल के साथ-साथ गाँवों के पड़ोस में नदी के किनारे-किनारे चौकियाँ बैठ गई थीं। किन्तु इतना आयोजन होने पर भी वे बस्ती में घुस कर बालेश्वर की ओर भाग चले। उन के साथ चित्तप्रिय, मनोरञ्जन, नीरेन्द्र और ज्योतिष ये चार युवक थे। उस समय सबेरा हो गया था, गाँव के लोगों को पुलिस ने समझा दिया था कि एक भयंकर डकैतों का दल उन के इलाके में छिपा हुआ है, उन्हें पकड़ने अथवा पकड़ा देने पर यथेष्ट पुरस्कार दिया जायगा। पिछले दो दिन यतीन्द्रनाथ को खाना या सोना कुछ नसीब नहीं हुआ। दिन दोपहर की धूप में उन्हें फिर भी ग्राम, नदी, नाले पार करके चलना पड़ रहा था। राह में एक नदी पार होते समय माझी से कहा कि सारा दिन उन्हें कुछ खाने को नहीं मिला, थोड़ा सा भात राँध दे तो उनके प्राण बचें, किन्तु हिन्दू माझी अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों की रक्षा में ही व्यस्त रहा, ब्राह्मण की प्राणरक्षा हो या न हो, ब्राह्मण को भोजन करा के वह नरक जाने को प्रस्तुत न था, वह नीच जाति का हो कर ब्राह्मणों को किसी प्रकार भात राँध कर न दे सकता था, इसी कारण भात राँधने की हाँडी भी न दे सकता था। इधर पुलिस को भी सन्धान मिल गया कि

यतीन्द्रनाथ अमुक गाँव में से गुज़र रहे हैं। यतीन्द्रनाथ के पीछे-पीछे सशस्त्र पुलिस दल छूट पड़ा। इस प्रदेश में यदि विप्लवियों का आर्गनिजेशन (संगठन) रहा होता तो उस विपत्ति में भी वे रक्षा पा सकते। किन्तु आर्गनिजेशन न रहने से उन्हें क्रमशः एक गाँव से दूसरे गाँव भागना पड़ा। इस प्रकार सन्ध्या के बाद बालेश्वर के निकट एक जंगल में आ उपस्थित हुए। उस समय ज़िले के मैजिस्ट्रेट और ज़िले के सुपरिन्टेन्डेन्ट, आमर्ड (सशस्त्र) पुलिस सर्चलाइट (Search light) इत्यादि खण्डयुद्ध (skirmish) का सब सरञ्जाम संग ले कर यतीन्द्रनाथ के पीछे दौड़ते आते थे। यतीन्द्रनाथ दल सहित आगे-आगे जा रहे थे, और पीछे पुलिस दल दो भागों में बँट कर जंगल के दोनों बाज़ू पर सर्चलाइट छोड़ते हुए क्रमशः एक दूसरे के नज़दीक होते हुए यतीन्द्रनाथ का पीछा कर रहा था। इस प्रकार जंगल में से खिसक जाना यतीन्द्रनाथ के लिए सम्भव न रहा। भोर भी हो गया। अब और निस्तार नहीं—पुलिस बहुत ही निकट थी। उस समय यतीन्द्रनाथ के साथियों ने सजल नेत्रों से प्रार्थना की—वे मरते हैं तो मरें, यतीन्द्रनाथ कपटवेष से दूसरी जगह निकल जायँ। किन्तु यतीन्द्रनाथ ने यह प्रस्ताव नहीं माना। वे बोले—"प्यारे भाई, देखो, विचार करो, हम सब पिता-माता की स्नेहमयी गोद, स्त्री-पुत्रों का माया बन्धन, बन्धु-बान्धवों का प्यार-दुलार और घर की सुखशान्ति छोड़ कर आये हैं, एक संग काम करेंगे यही कह कर न ? अब इस विपत्ति के समय

वह प्रण क्यों कर छोड़ दें ? मनुष्य तो अमर नहीं है। एक न एक दिन उसे मरना ही होगा। तब कायरों की तरह मरने से लाभ क्या ?"

युद्ध करना ही तय पाया। एक ओर प्रायः हज़ार से अधिक गाँव वाले, डाकू पकड़े जा रहे हैं यह समझ कर, हथियार बन्द पुलिस सेना का साथ दे रहे हैं—दूसरी ओर हैं, केवल पाँच विप्लवी! वे फिर जंगल छोड़ कर गाँव में आ घुसे। भूख, अनिद्रा और राह की मेहनत से वे सभी हारे-थके थे। एक पैसे का चना-चबेना ख़रीद कर खा लेने का भी चारा न था। इतने में दोनों दलों ने एक दूसरे को देख लिया, दोनों ओर से गोली चली। पुलिस की ओर के एक साहब विप्लवियों की ओर ज़रा अधिक आगे बढ़े, उसी समय चित्तप्रिय की एक गोली से उन की टोपी आसमान में उड़ गई। पुलिस के साहब फिर आगे न बढ़े। विप्लवी लोग ऊँची-नीची ज़मीन पर लेट कर निशाना बाँध कर गोली छोड़ने लगे। पुलिस की ओर से भी धारा-प्रवाह गोलियाँ बरसने लगीं। इस प्रकार प्रबल शत्रुओं के मुक़ाबले में थके-माँदे, भूखे-प्यासे पाँच आदमी कब तक युद्ध कर पाते ? विप्लवियों की गोलियाँ भी ख़तम होने को आईं। वे सभी घायल हो गये थे। किन्तु घायल होने पर भी उन्होंने हथियार नहीं रक्खे। इतने में एक घातक गोली आ कर चित्तप्रिय को अमर-धाम ले गई। और सब भी उस समय बुरी तरह घायल थे। यतीन्द्रनाथ उस समय साथियों से बोले "अब और शक्ति क्षय करने से कुछ लाभ न होगा, चित्तप्रिय

गया, मैं भी बचूँगा नहीं, तुम अब वृथा प्राण न दो, शायद तुम फिर भविष्य में कुछ काम कर सको", किन्तु साथी लोग लड़ कर प्राण देना चाहते थे। पर यतीन्द्रनाथ उन के प्राण बचाना चाहते थे। अन्त में उन्होंने यतीन्द्रनाथ के आग्रहपूर्ण अनुरोध से आत्मसमर्पण कर दिया। बहुत ख़ून गिरने से यतीन्द्रनाथ का शरीर अवसन्न हो कर गिर पड़ा, प्यास से उनका गला सूख गया था। डूबती आवाज़ में उन्होंने कहा—"पानी"! बालक मनोरञ्जन के शरीर से उस वक्त रक्तधारा बह रही थी। किन्तु नेता की इस अन्तिम आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए वह उस समय भी पास के जलाशय से चादर भिगो कर पानी लाने के लिए चल पड़ा। इस दृश्य से पुलिस के साहब भी पिघल गये। वे मनोरञ्जन से बैठने को कह कर कोई बर्त्तन न होने से अपनी टोपी में ही जल भर कर मरते आदमी के मुँह में डालने लगे। गले में पानी पहुँचने पर यतीन्द्रनाथ के मुँह से बात निकली, उस समय स्निग्ध मधुर हँसी हँस कर वे साहब से बोले, "इस मामले में मैं ही अकेला उत्तरदायी हूँ, इन मेरे साथियों ने मेरे आदेश का ही पालन किया है।" यतीन्द्रनाथ ने कटक के अस्पताल में प्राण त्याग किया। मनोरञ्जन और नीरेन्द्र को फाँसी हुई। ज्योतिष को आजन्म कालेपानी की सज़ा मिली। यही ज्योतिषचन्द्र बच गये थे, इसी से उन के पास से यह सब संवाद पा कर आज हम, देशवासियों को दे सके हैं। अन्डमन जेल में नानारूप निर्यातनों को, सह न सकने से ज्योतिषचन्द्र वहीं पागल हो

गये थे । आज कल सुना है वे बहरामपुर के पागलख़ाने में रहते हैं ।*

मृत्यु की गोद में बैठे हुए, कटक के फाँसी घर के अँधेरे कोने से मनोरञ्जन और नीरेन्द्र ने जो अन्तिम चिट्ठी कलकत्ते भेजी थी, वह अतीत की स्वप्नमय कहानी प्रकाशित करते हुए छाती में कैसे-कैसे स्पन्दन अनुभव होते हैं ! उन्होंने लिखा था—

"चित्तप्रिय और दादा (भैया) चले गये, हम भी जाते हैं । आशा है आप लोग पहले की तरह काम चलायेंगे । भगवान् आप लोगों को सफलता दान करेंगे । आज हमारे जीवन की विजयादशमी है । अलविदा ! अलविदा ! जो चले गये उन्हें लौटा लाने का कोई उपाय नहीं । किन्तु ज्योतिष की मुक्ति के लिए क्या करना चाहिए, यह उन के स्वदेशवासी ही निश्चय कर सकेंगे ।"

इस चिट्ठी के प्रसंग से एक और चिठी की बात याद आ गई । जैनधर्मावलम्बी होते हुए भी उन्होंने कर्तव्य की ख़ातिर देश के मंगल के लिए सशस्त्र विप्लव का मार्ग पकड़ा था । 'निमेज़'† के ख़ून के अपराध में वे भी जब फाँसी की कोठरी में क़ैद थे, तब उन्होंने भी

* पीछे फ़ारवर्ड में छपा था कि ज्योतिषचन्द्र पाल बहरामपुर के पागलख़ाने में स्वर्गवासी हो गये ।

† निमेज़ के महन्त का वध सन् १९१३ में हुआ था । रौलेट कमिटी की रिपोर्ट के बिहार-उड़ीसा प्रकरण (आठवें अध्याय) में उस का उल्लेख है ।

जीवन-मरण के वैसे ही सन्धिस्थल से अपने विप्लव के साथियों के पास जो पत्र भेजा था, उस का सार कुछ ऐसा था—"भाई, मरने से डरे नहीं और जीवन की भी कोई साध नहीं है; भगवान् जब जहाँ जैसी अवस्था में रक्खेंगे, वैसी ही अवस्था में सन्तुष्ट रहेंगे।" इन दो युवकों में से एक का नाम था मोतीचन्द और दूसरे का नाम था माणिकचन्द या जयचन्द।

इन सब विप्लवियों के मन के तार ऐसे ऊँचे सुर में बँधे थे जो प्रायः साधू और फ़क़ीरों के बीच ही पाया जाता है। इन सब विप्लवियों के जो प्रतिपक्षी थे, वे अंग्रेज़ भी अनेक बार दिल खोल कर इन की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सके। उस ज़माने के ख़ुफ़िया विभाग के सर्वेसर्वा, आजकल कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर मि॰ टेगार्ट ने, सुनते हैं, परलोकगत प्रतिष्ठित बैरिस्टर मि॰ जे॰ एन॰ राय को यतीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में कहा था, "Though I had to do my duties I have great admiration for him. He was the only Bengali who died in an open fight from a trench." (यद्यपि मुझे अपना कर्त्तव्य पालना पड़ा, पर मेरे दिल में उस के लिए बड़ा आदर है। वह एक मात्र बंगाली था जो एक खुली लड़ाई में खन्दक से लड़ता हुआ मारा गया)।" किन्तु टेगार्ट साहब ने जिस समय यह बात कही थी उस के बाद और भी अनेक बंगाली ऐसी ही खुली लड़ाई में काम आये, उन का भी थोड़ा सा परिचय पाठकों को देता हूँ।

६ सितम्बर सन् १६१५ को यतीन बाबू और उन के साथियों ने खुली लड़ाई में प्राण दिये। किन्तु उस के बाद भी प्रायः १६१८ तक विप्लवियों के अस्तित्व का परिचय विशेष रूप से मिलता रहा। सन् १६१६ के अन्तिम भाग में ख़ुफ़िया विभाग के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बसन्तकुमार चट्टोपाध्याय पर, जो इससे पहले दो बार आश्चर्यमय तरीक़ों से बच गये थे, तीसरी बार विप्लवियों ने हाथ साफ़ किया। सन् १६१७ में गोहाटी में विप्लवियों ने साथ पुलिस का खंड युद्ध (Skirmish) हुआ, और सन् १६१८ में ढाका में फिर पुलिस के साथ विप्लवियों का सशस्त्र मुक़ाबिला हुआ, जिसमें विप्लवियों के दो जने खेत रहे। पाबना में भी एक छोटी-मोटी मुठभेड़ हुई, इस सब के अलावा ख़ून डकैती तो जारी ही थी। इन सब सशस्त्र मुठभेड़ों का थोड़ा-बहुत परिचय यहाँ देते हैं। सम्भवतः सन् १६१६ में विप्लव दल की ओर से बिहार में विप्लववाद का प्रचार करने को 'वीरभूम के नलिनी बाक्चि भागलपुर के कालेज में पढ़ने भेजे गये। कुछे ही दिन में इस बंगाली पर पुलिस की नज़र पड़ गई। नलिनी पढ़ना छोड़ कर फ़रार हो गये। नलिनी छात्रवृत्ति पानें वाले अच्छे विद्यार्थी थे, पर छात्र-वृत्ति के झंझट में कौन पड़े ? नलिनी एक दम ख़ालिस बिहारी बन कर बिहार के शहर-शहर में घूमने लगे। कुछ दिन बाद फिर पुलिस की नज़र में पड़े। नलिनी बंगाल आये तब था सन् १६१७, बंगाल के उस समय बुरे हाल और बाँके दिहाड़े थे—चारों

ओर थी धरपकड़, खानातलाशी, इएटर्नमेएट (नज़रबन्दी), डिपोर्टेशन (देश निकाला) और गोलियों की बौछार ! इसी से बंगाल में रहना तब बेखटके न था। विप्लव दल में तब यह फ़ैसला हुआ कि दल के अच्छे-अच्छे कार्यकर्ताओं को आसाम के किसी स्थान में रिज़र्व फ़ोर्स (सुरक्षित सेना) के रूप में रक्खा जाय। फलतः नलिनी वाकूचि, नलिनी घोष, नरेन बैनर्जी और अन्य अनेक लोगों ने गौहाटी (आसाम) में आ कर आश्रय लिया। सोते समय उन के बिछौने के तले भरी रिवाल्वरें रहतीं और उन्हीं में से एक-एक आदमी दो-दो घएटे के लिए पहरेदार के रूप में खिड़की के नज़दीक सावधानी से बैठा रहता। कलकत्ते की पुलिस ने किसी गिरफ़्तार विप्लववादी के पास से गोहाटी का सम्वाद पा कर, ६ जनवरी सन् १६१७ को यह मकान घेर लिया। पहरेदार ने पुलिस को आते देख सब को जगा दिया, पर चुपचाप ही। रिवाल्वर और पिस्तौल हाथ में ले कर सभी बाहर आ कर पुलिस पर गोलियाँ दागने लगे। इस एकाएक आक्रमण से पुलिस छिन्न-भिन्न हो गई, और इसी बीच विप्लवी भी पहाड़ की ओर खिसक गये, किन्तु तीसरे पहर अनगिनत सशस्त्र पुलिस ने आ कर सारी पहाड़ी के आस-पास घेरा डाल दिया। दोनों ओर से गोली चली बहुत से घायल हो कर पकड़े गये। इन में से केवल दो जने पुलिस की आँख बचा कर भाग सके। इन दो में से एक यही नलिनी थे। छः दिन रास्ता चल कर पहाड़ पार हो कर नलिनी लामडिंग स्टेशन पर

आ पहुँचे। वह यात्रा क्या सीधी बात थी। बग़ैर खाये और सोये प्रतिदिन चढ़ाई उतराई पर गोडे तोड़ने पड़े थे। सदा पुलिस की नज़र से अपने को बचाते हुए, कभी वृक्ष पर चढ़ कर, कभी पहाड़ की चोटी पर किसी चट्टान पर सो कर रात कटती थी। बराबर तेज़ चाल से पहाड़ की चढ़ाई-उतराई में चलते-चलते हाथ पैर की तलियों में दराड़ें पर गईं। फिर क्या केवल चलने का ही कष्ट था? पहाड़ की एक क़िस्म की चिपचिपी चिचड़ी नलिनी के माथे और पीठ में चिपट गई, अनेक तरह से खींचने-छुटाने से भी वह नहीं छूटी। इस चिचड़ी का विष चढ़ जाने की पीड़ा से जर्जरित हो कर नलिनी एक दम बेहाल हो गये। जो हो, मौत के साथ लड़ाई लड़ कर आसाम की पुलिस के हाथ से बच कर नलिनी बिहार आये। किन्तु वहाँ रहना निरापद न था। यह देख वे फिर बंगाल चले आये। हावड़ा स्टेशन पर उतर कर जिन के मिलने की आशा की थी उन में से किसी को न देख पाया। संग में एक रिवाल्वर थी। कहाँ जायँ? पखवाड़े से अधिक हो चुका था जब से न खाना, न सोना न कोई और नियम रहा था, शरीर टूट चुका था, ज़हरीला कीड़ा तब भी माथे और देह में चिपटा हुआ था, हावड़ा में ही नलिनी को तेज़ बुखार हो गया। लाचार कोई उपाय न देख कर वे क़िले के मैदान के एक पेड़ के नीचे सो गए। मुर्दे की तरह दिन-रात वहीं पड़े रहे। परले दिन दैवयोग से उन के एक परिचित विप्लवी ने उन्हें देख लिया। उन के सब अंगों में उस समय चेचक के चिह्न

दिखाई दिये। कलकत्ते में विप्लवियों की अवस्था उस समय अत्यन्त शोचनीय थी, प्रायः सभी विप्लवी पकड़े जा चुके थे। टका पैसा तब किसी के हाथ में न था, दो-चार जने जो बाकी थे वे भी तब क्षीण आशा के साथ इधर-उधर घूमते-फिरते थे। कलकत्ते की एक छोटी सी कोठरी में उन्हें रक्खा गया। चेचक से उन की आँखें और मुँह ढक गये, जिह्वा अचल हो गई थी। तीनदिन तक बात करना भी बन्द रहा। इस प्रकार पैसा पास न होने से चिकित्सा कराये बिना दिन काटते रहे। इस मकान में उस समय केवल एक और विप्लववादी अपने आपको छिपाये हुए थे। मृत देह की यथोचित क्रिया करने को भी लोग कैसे जुटेंगे, यह समझ में न आता था। सन् १९१८ में विप्लवियों की अवस्था ऐसी ही शोचनीय हो गई थी। किन्तु नलिनी इस चेचक से भी मरे नहीं। मृत्यु और भी महनीय रूप में दिखाई देने के लिए उस समय तक ढाका में प्रतीक्षा कर रही थी। चंगे हो कर नलिनी बुझते विप्लवदीप का भार ले कर फिर ढाका में आ रहे। नलिनी और तारिणी मजूमदार एक ही मकान में रहते थे। सन् १९१८ की १५ जून को भोर के समय पुलिस ने फिर नलिनी का मकान घेर लिया। फिर दोनों ओर से गोली चली। तारिणी के अंगों में बहुत गोलियाँ लगने से वे वहीं मर कर गिर पड़े। नलिनी ने गोली खा कर भी भागने की चेष्टा की, परन्तु फिर बन्दूक की गोली से घायल हो कर उन का शरीर भी ज़मीन पर लोटने लगा।

विप्लववादी नलिनी घायल अवस्था में अस्पताल में लेटाए हुए हैं—

पुलिस नाम-धाम लेने में व्यग्र है,—डाइंग डिक्लेरेशन, मरते समय का इज़हार, माँगती है ।

मृत्युशय्या पर लेटे हुए घायल विप्लववादी असह्य यन्त्रणा सहते हुए मृत्यु की प्रतीक्षा में हैं । ऐसे समय साधारण व्यक्ति अपने को छिपा नहीं सकता, वरन् इच्छा होती है कि उसके कार्यों को देशवासी भली भाँति जान जायँ । जिन के लिए वह मरता है वे जान जायँ कि किस प्रकार वह दूसरों के लिए प्राण दे गया, साधारण मनुष्य की यही इच्छा होती है । किन्तु विप्लववादियों की अपने को छिपाने की शैली साधारण नहीं होती । शिक्षा और साधना के बिना आत्मगोपन का वैसा सामर्थ्य आता ही नहीं । मृत्यु के समय भी इच्छा नहीं है, कोई उन्हें जान जाय, या कोई उन का "मूल्य" समझ ले—कोई मैसेज (सन्देश) नहीं है*—"Unwept, unhonoured, unsung" ही वह जाना चाहता है ! वह नहीं चाहता कोई उस पर आँसू बहाए, कोई उस का नाम याद करे, कोई भी उस का गीत गाए !—इसी लिए मृत्युशय्या पर पड़े विप्लववादी के क्षीण कण्ठ से उत्तर निकला, "Don't disturb please, let me die peacefully, तंग न करो भाई, मुझे शान्ति से मरने दो ।"

---

* इस प्रसङ्ग में असहयोग के दिनों की याद आ जाती है, जब प्रत्येक छोटे-बड़े नेता चार दिन की हवालात होने पर भी कालमों लम्बे "मैसेज" अख़बारों में भेजना अपना पहला कर्त्तव्य समझते थे ।

पुलिस ने अनेक प्रकार से बात निकालने की चेष्टा की—कहा नाम तो बताओ—घर कहाँ है ? किन्तु उसका वह एक ही उत्तर था "don't disturb please, let me die peacefully कृपा कर और तंग न करो भाई, शान्ति से मरने दो।

इस प्रकार जो मृत्यु को महिमामय बना सकते थे, इस प्रकार जिन्होंने आत्मगोपन करना सीखा था, उन की कहानी पर देशवासियों ने क्या कभी ग़ौर करके देखा है ? वे लोग जीवन की सब आशा-प्रतीक्षा अपूर्ण रख कर संसार से एकदम निश्चिन्त हो गए हैं। प्रतिष्ठा की रत्ती भर भी कामना उन्होंने नहीं रक्खी। मृत्यु के दरवाज़े पर पहुँच कर, जहाँ कोई बात खुल जाने का डर नहीं, वहाँ भी ख्याति का निषेध कर के शान्ति से मरते हैं। वे अपने कर्म से यदि किसी को तृप्त करना चाहते हैं तो अपने ही अन्तरात्मा को, इसी लिए किसी और से कुछ भी अपेक्षा न रख कर शान्ति से मरना चाहते हैं। संसार की किसी चीज़ की भी चाह नहीं है, केवल देने के ही वे मालिक हैं।

इन सब विप्लवियों को न जाने क्या कह कर बुलाना चाहिए ! शायद ये पागल थे, या शायद ये भ्रान्त निर्बोध बालक थे, क्योंकि हमारे इस अभागे देश के अभिज्ञ नेता और राजनीति-विशारद विचक्षण पंडित इन्हें इन्हीं शब्दों से पुकारते रहे हैं।

इन विप्लवियों का सब से बड़ा दोष, जान पड़ता है, यही था कि ये अपने उद्देश्य-साधन में कृतकार्य नहीं हो सके। मास के बाद मास

और बरस के बाद बरस विप्लव के लिए अनथक परिश्रम करने के बाद भी ये केवल एक बड़ी व्यर्थता का ही उपार्जन कर सके! जिस पथ का अन्तिम परिणाम केवल व्यर्थता हो वह पथ क्या भ्रान्त नहीं है? इस व्यर्थता का कुछ भी मूल्य है? भारत के अभिज्ञ नेता और विचक्षण समालोचक विप्लवियों से ऐसे ही प्रश्न प्रायः करते रहे हैं।

व्यर्थता के एक ही पहलू पर हमारा ध्यान जाता है; किन्तु इस व्यर्थता की आड़ में जगत् की श्रेष्ठ सम्पद् किस प्रकार अपने को छिपाये रहती है, विफलताओं के द्वारा किस प्रकार शक्ति का संचार होते-होते एक दिन इस व्यर्थता के बीच सार्थकता आ कर दर्शन देती है, विफलता और पराजय के निराशा-वेदना-पूर्ण अवसाद के समय में इन सब बातों को हम में से बहुत से हृदयङ्गम नहीं कर पाते। सभी समाजों में, सभी समयों में विप्लवी लोगों पर समाज के विज्ञ और अभिज्ञ लोग हँसते और लाञ्छन लगाते रहे हैं; इस का कारण यही है कि प्रायः सभी देशों के सभी विप्लवियों की पहली चेष्टायें व्यर्थ हुई हैं और समाज के विज्ञ और अभिज्ञ लोग इसी व्यर्थता के माप से ही सब विषयों पर विचार करते रहे हैं। उसी नियम से भारत के विप्लववादी भी विज्ञ और अभिज्ञ लोगों के मत में भ्रान्त-पथ के यात्री हैं। और इन समालोचकों में से जो बड़े ही प्रवीण और होशियार हैं। वे इन विप्लवियों को 'ईडियट' (बुद्धू पागल) कहने में भी संकोच नहीं करते। भारत की लब्धप्रतिष्ठ मासिक पत्रिका 'माडर्न रिव्यू' के विचक्षण सम्पादक ने विप्लवियों को

निर्देश करके कहा था कि यदि भारत में कुछ भी लोग सशस्त्र विप्लव-वादी हैं तो भारतवासियों को निश्चय से अपनी बुद्धि-विवेचना पर सन्देह करना होगा।

विप्लवियों और समालोचकों में भेद यही है कि विप्लवी लोगों की अपने आदर्श पर अटूट श्रद्धा है, इसी लिए उन्होंने अद्भुत निष्ठा के साथ अपने आदर्श की ओर जाने वाले पथ पर चलते हुए जीवन बिताया है, और इन समालोचक लोगों ने आरामचौकी पर बैठ कर समालोचना करने को ही जीवन का पेशा बना डाला है और बहुतों का तो यह समालोचना करना ही जीविका अर्जन करने का मुख्य अवलम्ब हो गया है। जीविका कमाने के लिए अनेक बातों का हिसाब करके चलना होता है, किन्तु इस प्रकार हिसाब करके चलने से हमेशा सत्य की मर्यादा को अटूट रखना शायद सम्भव नहीं होता। इस सब के अलावा विप्लवियों में और इन सारे समालोचकों में एक और भी बड़ा भेद है, विप्लवियों के नज़दीक जो चीज़ "Faith" (श्रद्धा) है; समालोचकों के लिए वह केवल "Opinion" (सम्मति) है। यह "सम्मति" प्रायः सफलता का मोह पार नहीं कर सकती; इसी लिए फलाफल पर निर्भर हो कर ही बहुधा "सम्मति" बनती है। किन्तु जो लोग इतिहास-स्रष्टा के आसन पर बैठते हैं वे इस "सम्मति" की परवाह नहीं करते; वे निष्ठा-वान् और श्रद्धा-सम्पन्न व्यक्ति होते हैं। विफलता उन्हें श्रद्धाभ्रष्ट नहीं कर पाती। इसी कारण इतिहास में वे चिरस्मरणीय हो जाते हैं, इसी से ये

श्रद्धा-सम्पन्न व्यक्ति ही जगत् में कुछ स्थायी काम कर जाने में समर्थ होते हैं।

भारत के विप्लववादी भी ऐसे ही श्रद्धा-सम्पन्न व्यक्ति थे। भारत के इन विप्लवियों की ओर निर्देश कर के ही प्रसिद्ध क़ानून-पेशा बैरिस्टर नार्टन साहब ने एक बार कहा था, "ये सब विप्लवी अपने अभीष्ट साधन में कृतकार्य नहीं हो पाते इसी कारण आज वे सरकार के अपराधी हैं, किन्तु यदि ये अपने उद्देश्य को सफल कर सकते तो फिर यही संसार में स्वदेश भक्त, वीर तथा साधक कह कर पूजे जाते।"

भारतीय विप्लवियों ने जो मार्ग ग्रहण किया था उस मार्ग से ही भारत की मुक्ति होगी कि नहीं कौन कह सकता है? शायद उन्होंने उलटा ही रास्ता ग्रहण किया हो; किन्तु उन के साथ हमारा मत नहीं मिलता इसी कारण तो उन्हें "ईडियट" (बुद्धू) कहना उचित नहीं है। न जाने संसार के सभ्य लोगों में भारतवासियों के मान-इज़्ज़त की इन विप्लवियों के द्वारा अधिक रक्षा हुई है अथवा इन के विरोधी समालोचकों की युक्तियों के ज़ोर पर! तो भी यह बात तो हम जानते हैं कि गत ६० बरसों तक जब रूसी विप्लववादियों के सभी प्रयास निष्फल हुए थे, जब प्रबल प्रतापी आस्ट्रिया की राजशक्ति के विरुद्ध इटली के मुट्ठी भर विप्लववादियों ने पहले-पहल सिर उठाया था, तब इन देशों के विप्लववादियों को भी ऐसे ही व्यंग और गालियाँ सहनी पड़ती थीं। ६० बरस के अनथक परिश्रम के बाद, अनेक बाधाओं और व्यर्थताओं में से गुज़र कर सारे जगत्

की उपेक्षा और प्रतिकूलता को सह कर आज रूसी विप्लववादियों की आशा सफल होने जा रही है। प्रायः ४० बरस की कशमकश के बाद, कितने त्याग, कितने निर्यातन और कितनी अशान्तियों को लांघ कर इटली ने स्वाधीनता पाई थी। किन्तु जो इस मुक्ति पथ के प्रथम यात्री थे उन्हें उन की पहली विप्लवचेष्टाओं के व्यर्थ होने के दिन कितनी निन्दाएँ सहन न करनी पड़ी थीं। इस प्रसंग में आइरिश वीर की चिरस्मरणीय बात याद आती है—"Any man who tells you that an act of armed resistance—even if offered by ten men only—even if offered by men armed with stones—any man who tell you that such an act of resistance is premature, imprudent, or dangerous, any and every such man should be at once spurned and spat at, for remark you this and recollect that somewhere and somehow and by somebody a beginning must be made and that the first act of resistance is always and must be ever premature, imprudent and dangerous" अर्थात् "कोई आदमी जो तुम्हें यह कहे कि एक सशस्त्र मुक़ाबला—चाहे दस आदमी ही ऐसा मुक़ाबला करें—चाहे उन आदमियों के पास पत्थरों के सिवाय और कोई हथियार न हो—कोई आदमी जो तुम्हें कहे कि ऐसा मुक़ाबला अपरिपक्व है, अक़्लमन्दी का

काम नहीं है या ख़तरनाक है, प्रत्येक ऐसा आदमी लात खाने लायक़ और मुँह पर थूका जाने लायक़ है। क्योंकि यह बात समझ लो और याद रक्खो कि कहीं न कहीं, किसी न किसी तरह और किसी न किसी को मुक़ाबले का आरम्भ करना होगा और मुक़ाबले का पहला काम हमेशा अपरिपक्व और ख़तरनाक होता है और होना ही चाहिए।"

मैंने अपनी शक्ति के अनुसार इन विप्लवियों का एक संक्षिप्त क्रमबद्ध इतिहास लिखने की चेष्टा की है। किन्तु इतिहास का प्राण होता है— जजमेंट—निर्णय। इस जजमेंट (निर्णय) के बिना इतिहास ख़ाली घटना-पञ्जिका (chronicle of events) रह जाता है। इसी से मैं वक़्त-ब-वक़्त घटनाएँ छोड़ कर और अनेक बातों को भी ले आया हूँ। और विप्लवियों की मैंने प्रशंसा की है इस से कोई यह न समझे कि मैं विप्लववाद का प्रचार करता हूँ। मैं कहना चाहता हूँ कि उन के साथ हमारा मतभेद रहने पर भी उन के चरित्र बल को हम अस्वीकार नहीं कर सकते। किन्हीं के साथ मतभेद रहने से ही उन से घृणा करना या उन से गाली-गलौज करना तो अभीष्ट नहीं है, और विप्लवियों के विरोधी अंग्रेज़ राज्याधिकारियों ने भी इन के चरित्र की भरपूर प्रशंसा की है, इस से वे (अंग्रेज़) भी सचमुच विप्लववादी नहीं हो गये।

इतिहास लिखने बैठा हूँ, इसी से भारतीय विप्लवियों को भारतवासी किस दृष्टि से देखते थे, क्यों इस दृष्टि से देखते थे, और उन्हें किस दृष्टि से देखना उचित है? इन सब विषयों की भी आलोचना कर गया

हूँ। विप्लवियों ने सचमुच पागलपन किया था कि नहीं यह नहीं जानता हूँ, तो भी उन के पागलपन की बात सुन कर रवि बाबू की एक कविता के कुछ पद याद आते हैं—

"कोन आलोते प्राणेर प्रदीप
ज्वालिए तूमि धराय आस*
साधक ओगो प्रेम्कि ओगो
पागल ओगो धराय आस।"

"हे साधक, हे प्रेमिक, हे पागल तुम इस भूमि पर आते हो—किस ज्योति से प्राणों के प्रदीप को जला कर तुम इस भूमि पर आते हो!"†

---

* उच्चारण—आसो

† इस अध्याय के कुछ अंश नलिनी बाबू के "विसववाद", 'आत्म शक्ति' में प्रकाशित, गोपेन्द्रलाल राय के एक लेख और "शंख" में प्रकाशित नलिनी बाबू की कहानी से लिये गये हैं।—लेखक।

बीच में श्रीरासबिहारी बोस



जापान की एक मीटिंग में, अभी हाल की ली गई तस्वीर।

सातवाँ परिच्छेद

विप्लव का प्रयास व्यर्थ क्यों हुआ ?

भारतीय विप्लवियों के सभी प्रयास क्यों व्यर्थ हुए। यह जानने के लिए पहले यह समझ लेना होगा कि वे चाहते क्या थे ? उन का उद्देश्य भली भाँति समझे बिना यह जानना भी कठिन होगा कि वे कहाँ तक विफल हुए या कहाँ तक नहीं, और उनकी इस विफलता का कारण क्या था। इसी लिए उन की इस व्यर्थता का कारण खोजने से पहले उन का उद्देश्य क्या था इस विषय की कुछ आलोचना करना आवश्यक है।

भारतीय विप्लववादियों का उद्देश्य क्या था, इस विषय पर कहने को इतनी बातें हैं कि यहाँ पर उन की पूरी आलोचना सम्भव नहीं है, कारण कि यह आलोचना करने के लिए भारत के राष्ट्रक्षेत्र में इस विप्लव के आविर्भाव से आरम्भ कर उन की क्रमिक परिणति के इतिहास की भी आलोचना करना आवश्यक हो जाता है, और इस प्रकार यह आलोचना इतनी बड़ी हो जायगी कि हम आलोच्य विषय से बहुत दूर जा पड़ेंगे। इसी लिए इन सब आलोचनाओं को किसी और समय करने

की इच्छा है। इस समय केवल अपना विषय समझने के लिए जितनी आलोचना आवश्यक प्रतीत होती है, उतनी ही करूँगा।

भारतीय विप्लव दल के बीच चाहे कितने ही मतभेद क्यों न रहे हों, इस विषय में सभी सम्पूर्णतः एकमत थे कि भारत को अक्षुण्ण स्वाधीनता प्राप्त करनी ही होगी, अर्थात् भारत-भिन्न कोई भी जाति भारत के भले-बुरे की विचारकर्ता हो कर भारत के मंगल के लिए भारत के किसी भी काम में हस्तक्षेप न कर सके—भारत के लिए किस प्रकार की शासन-प्रणाली सब से अधिक मंगलकारी होगी इस विषय के विचारकर्ता और परिचालक भारतवासी ही हों। भारत का सामाजिक आदर्श क्या होगा, भारत में सामाजिक समस्या का समाधान किस प्रकार करना सब से अधिक मंगलजनक होगा, भारत-भिन्न जातियों के साथ भारत किस प्रकार का सम्बन्धसूत्र स्थापन करेगा, भारत के व्यवसाय-वाणिज्य को किस प्रकार परिचालन करने से भारत का और जगत् का मंगल होगा, इन सब बातों को भारतवासी ही जैसा ठीक समझें वैसा ही हो, और किसी भी जाति का उस में कोई हाथ न रहे—यही थी भारतीय विप्लवियों की दुराकांक्षा। भारत की यह स्वाधीनता ब्रिटिश साम्राज्य के बीच रह कर किसी तरह भी अक्षुण्ण नहीं रह सकती, बालक जिस प्रकार निःसंशय रूप से अपने माता-पिता को पहचानता है, भारत के विप्लवी भी यह बात उसी प्रकार निःसंशयरूप से जानते थे। इसी से भारतीय विप्लवियों की सब चेष्टाओं की जड़ में यह बात थी कि भारत को इस प्रकार शक्ति-

सामर्थ्य-सम्पन्न कर दिया जाय जिससे वह भारत-भिन्न सभी जातियों के हाथ से सब प्रकार से छुटकारा पा सके। इस भारत-भिन्न जातियों के समूह में अंग्रेज़ अपवाद नहीं हैं, बरन् साक्षात् रूप से इन अंग्रेज़ों के साथ ही पहला संघर्ष आरम्भ होता है। कारण कि अंग्रेज़ों का ही साक्षात् रूप से भारत की सब अभिलाषा-आकांक्षाओं और भारत के सब उद्यमों के साथ घनिष्ट रूप से संसर्ग है। और वे लोग यह समझते थे कि भारत को इस प्रकार स्वाधीन करने का सब से मुख्य उपाय है, भारत की क्षात्र-शक्ति को जागृत कर देना—इस क्षात्रशक्ति के आदर्श को ही केन्द्र बना कर हमारे विप्लवियों ने अपनी सर्व कर्म-प्रचेष्टा को नियन्त्रित किया था। महात्मा गांधी के भारत के राष्ट्र-क्षेत्र में आविर्भाव होने से बहुत पहले से ही हमारे विप्लवियों को इस क्षात्र आदर्श और ब्राह्मण्य आदर्श के विषय में बहुत आलोचनायें और द्वन्द्व करने पड़े हैं। उन दार्शनिक आदर्शों का विचार और विश्लेषण करने की जगह यहाँ नहीं है, समय और सुयोग मिलने पर किसी और जगह वह करने की इच्छा है। तो भी संक्षेप से यहाँ इस सम्बन्ध में केवल दो-चार बातें कह देना बुरा न होगा। यथार्थ बात तो यह है कि ब्राह्मण्य आदर्श और क्षात्र आदर्श में सच-सच कहें तो कोई भेद नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण्य आदर्श की अन्तिम परिणति जहाँ होती है, क्षात्र आदर्श की भी अन्तिम परिणति ठीक वहीं होती है। अर्थात् क्षत्रिय धर्मावलम्बी पुरुष जब प्रकृति ज्ञान का अवलम्बन करके जीवन को नियन्त्रित करते हैं तब उस का जो

फल होता है, ब्राह्मण भावापन्न पुरुष भी वैसे ही प्रकृति ज्ञान का अवलम्बन ले कर जीवन बितायें, तो उस का भी वही एक ही फल होता है। अर्थात् यह जगत् ब्रह्म का ही प्रकाश है, और ब्रह्म ही कभी सगुण और कभी निर्गुण रूप में अपना प्रकाश करते हैं, यह विश्व ब्रह्मांड जो नित्य नये-नये रूपों में परिवर्तित होता है वह भी उसी ब्रह्म का ही सगुण प्रकाश है, और जो अनिर्वचनीय है, जो मुँह से प्रकट नहीं किया जाता, जहाँ जा कर मन बुद्धि धक्का खा कर प्रवेश करने में असमर्थ हो कर वापस लौट आते हैं, जिसे किसी भी विशेष से विशेषित नहीं किया जा सकता, अर्थात् जो ब्रह्म का ही निर्गुण स्वरूप है—उस निर्गुण और सगुण ब्रह्म में यथार्थ में कोई भेद नहीं है, इस ज्ञान की उपलब्धि करना ही ब्राह्मण्य और क्षात्र आदर्श का अन्तिम लक्ष्य रहा है। वेदान्त के इस आदर्श का अनुसरण करें तो ब्राह्मण्य और क्षात्र धर्म में सचमुच कोई भेद नहीं रहता,—किन्तु वेदान्त के इस धर्म को सब लोग स्वीकार नहीं करते; भारत के सब सम्प्रदाय यह बात नहीं मानते कि ब्रह्म का सगुण स्वरूप सम्भव है। वे कहते हैं, गुणातीत ब्रह्म का रूप भेद सम्भव नहीं है, ब्रह्म ही एकमात्र वस्तु है, और सभी अनित्य है, ब्रह्म के सिवाय और किसी वस्तु का यथार्थ रूप में कोई अस्तित्व नहीं है—आपाततः उन का होना प्रतीत होता है, पर वह भ्रममात्र है, यही ब्रह्म माया है। यह माया कहाँ से आई और इस माया का स्वरूप क्या है ? इस सम्बन्ध में वे

कहते हैं कि वह कहा नहीं जाता, वह अनिर्वचनीय है,—इसी से वे संसार को भी अनित्य कहते हैं और इसी से उन के जीवन का श्रेष्ठ आदर्श रहा है इस संसार को त्याग कर संसार के रास्ते से दूर जा कर निर्जन में, वन में, पर्वत में, गुफ़ा में रह कर अर्थात् संन्यास ले कर तपस्या करना, भगवान् की आराधना करना। ब्राह्मणों द्वारा परिचालित हिन्दू समाज का यही सनातन और सर्वश्रेष्ठ आदर्श रहा है यह बहुतों की धारणा है, इस आदर्श को ही जो मानव समाज के सम्मुख श्रेष्ठ आसन पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, वह ब्राह्मण्य धर्म के पक्षपाती हैं, इसी आदर्श को मैंने ब्राह्मण्य धर्म कह कर उल्लेख किया है। और क्षात्रधर्म कहने से मेरा प्रयोजन उस आदर्श से है, जिस आदर्श में इस नित्य नूतन परिवर्तनशील जीव-जगत् को मिथ्या माया कह कर उड़ा नहीं दिया जाता, जिस आदर्श में इस जीव-जगत् को, इस संसार को निर्गुण ब्रह्म से अभिन्न समझा जाता है जिस आदर्श की प्राप्ति के लिए इस संसार की अवहेलना न कर के, त्याग न कर के, इस संसार के भले-बुरे को, इष्ट-अनिष्ट को, हिंसा-अहिंसा को, राग-द्वेष को समतुल्य समझ कर इस भीषण संग्रामस्थल में रह कर ही ब्रह्म ही जीव-जगत् हुए हैं और इस जीव-जगत् में जो कुछ भला या बुरा है वह सभी ब्रह्म का ही स्वरूप है, इस सत्य की उपलब्धि करने के लिए सांसारिक कर्म में लिप्त रह कर ही अर्थात् सांसारिक कर्म के साथ ज्ञानयोग को युक्त करके, कर्मयोग के पथ में जो साधन करना

होता है, वैसे ही मैं क्षात्रधर्म कह कर पुकारता हूँ। और इन दोनों आदर्शों में सचमुच तीव्र द्वन्द्व रहा है। एक का आदर्श है बुद्ध और दूसरे का आदर्श वही कुरुक्षेत्र के श्रीकृष्ण, एक का आदर्श है श्री चैतन्य और दूसरे का आदर्श गुरु गोविन्द। एक के आदर्श को अनुसरण करने पर इस संसार को अनित्य माया ज्ञान कह कर इस की अवज्ञा और अवहेलना करनी होती है और दूसरे के आदर्श की प्राप्ति करने के लिए इस संसार को नित्य नये-नये रूपों में सजा कर पूजना होता है, युग-युग में सृष्टि की उद्दाम प्रेरणा से इस संसार को तोड़-फोड़ कर, चूर-चूर कर फिर नये सिरे से गढ़ कर खड़ा करना होता है। कभी ज्ञान के आलोक में जगत् को उद्भासित करके, कभी खड्ग की धार से रक्त का स्रोत बहा कर पृथ्वी को रँग कर, कभी प्रेम के प्रवाह में धरित्री सुन्दरी को स्नान कराके, संसार के सौन्दर्य को अद्भुत कारीगरी के साथ विविध आभाओं में अनेक रंगों में रंगीन, स्निग्ध और उज्ज्वल करके विस्मयकर बना डालना होता है।

यह सब आदर्शों का द्वन्द्व केवल वाक्चातुरी अथवा भाषा का द्वन्द्व ही न था; इस दल में जिन्होंने जिस आदर्श को श्रेष्ठ समझा, उन्होंने उसी आदर्श के पीछे सारा जीवन व्यतीत किया; इस प्रकार कितनों ने ही घर-बार छोड़ कर संन्यास का आश्रय लिया और अनेकों ने तिल-तिल कर के पूर्ण रूप से अपने परिवार वालों और राज्याधिकारियों के अनेक निर्यातन भोगते हुए, जीवन के भोग-विलास को तुच्छ समझ कर विपत्ति

के बीच ही जीवन बिता दिया। जो भी हो, विप्लवियों ने वर्त्तमान काल में छात्र आदर्श को ही श्रेष्ठ आसन दिया था। इसी से इस छात्र आदर्श को ही वे भारत के जन साधारण में प्रचार करने का प्रयास करते रहे।

इस भारत से विप्लवी लोग भारत के ग़रीब से ग़रीब जन साधारण तक को ही समझते थे, किन्तु किस प्रकार ये ग़रीब से ग़रीब जन साधारण तक अपनी अभिलाषायें व्यक्त करेंगे, और किस प्रकार सचमुच ही इन जन साधारण की अभिलाषायें अक्षुण्ण रह सकेंगी, देश के समाज में धनी और निर्धनों के बीच, ज़मींदारों और उन की रैयत के बीच, धनी व्यवसायपतियों और कुली-मज़दूरों के बीच, देशी और विदेशी व्यवसाय-पतियों के बीच परस्पर जो अनेक स्वार्थों के द्वन्द्व उपस्थित हो गये हैं, और इन विरुद्ध स्वार्थों के संघर्ष के कारण जगत् में जो अनेक प्रकार की अशान्ति, अनेक प्रकार के वैषम्य, अनेक अत्याचार निर्यातनों और अनेक भीषण रक्तपातों की सृष्टि हो रही है, इन सब द्वन्द्वों को कैसे सुलझाना होगा; और यथार्थ विप्लवी होने पर राष्ट्र के समान समाज को भी चूर-चूर कर नये सिरे से गढ़ना होगा, ये सब बातें भारत के विप्लवी लोग भली भाँति हृदयंगम नहीं कर पाये, और इन सब समस्याओं की ओर ध्यान देते हुए भारत के भावी राष्ट्र को सच ही किसी विशेष रूप में गढ़ना होगा, यह बात भी उन्होंने गम्भीर चिन्ता के साथ नहीं सोची थी। वे सोचते थे ये सब बातें स्वाधीनता पाने के बाद देखी जायँगी। तो

भी अधिकांश विप्लवियों का यही मत था कि भारत की राष्ट्र शासनपद्धति की नींव गणतंत्र के आदर्श पर ही स्थापित होगी। इस व्यापार में अधिकांश विप्लवी राजा के लिए कोई स्थान नहीं रखते थे। अधिकांश इस लिए कहता हूँ कि इन में ऐसे भी कुछ व्यक्ति थे जो सोचते थे कि यदि भारत के कोई स्वाधीन कहलानेवाले राजा भारत के इस स्वाधीनता समर में प्राण और मन से योग दें तो उन्हें भारत का राज्यासन दिया जा सकता है, और उस दशा में भारत का राष्ट्र संघटन इंगलैंड की पार्लियामेंट के अनुसार गठित होगा। महाराष्ट्र में "अभिनव-भारत" नामक गुप्त समिति की ओर से, "Choose oh Indian Princes," (अर्थात् भारत के राजाओ, अपना रास्ता चुन लो) शीर्षक की एक छोटी सी पुस्तिका का गुप्त रूप से प्रचार किया गया था, उस में बड़ोदा के राजा गायकवाड़ का स्पष्ट रूप से ही उल्लेख करके उपर्युक्त भाव का प्रचार किया गया था। पंजाब के सिक्खों में से अनेकों की इच्छा थी कि भारत में फिर ख़ालसा राज स्थापित किया जाय। फिर विप्लवियों में से अधिकांश हिन्दू ही थे इस लिए उन के बीच किसी-किसी के दिल में यह इच्छा गुप्त रूप से थी कि भारत के स्वाधीन होने के माने हिन्दू राज्य की पुनः स्थापना के होंगे। किन्तु क्रमशः यह भाव बिलकुल लुप्त हो जाता है, और अन्त में यद्यपि वे मुख्यतः हिन्दुओं के स्वावलम्बन के ऊपर ही भरोसा कर के अपने कार्य में आगे बढ़ते थे, तो भी स्वाधीन भारत की कल्पना में भारत की किसी भी जाति को उन्होंने

दूसरी जाति के अधीन कर रखने का संकल्प नहीं रक्खा, अर्थात् भारत की स्वाधीनता के लिए भले ही हिन्दू मुख्यतः परिश्रम करें तो भी स्वाधीन भारत में प्रत्येक जाति का समान अधिकार रहेगा अर्थात् प्रत्येक जाति का स्वार्थ अक्षुण्ण रहेगा, यही था भारतीय विप्लवियों का राजनैतिक आदर्श।

हमारे देश के प्रायः सभी लोग एक सुर से कहते रहे हैं कि भारत का विप्लव-प्रयास बिलकुल ही व्यर्थ हुआ है, और इस प्रकार उस का व्यर्थ होना ही अवश्यम्भावी था। वे कहते हैं, वर्तमान युग में नवीन वैज्ञानिक उन्नति के कारण किसी भी राजशक्ति के विरुद्ध कोई प्रजा सामरिक शक्ति की सहायता से विप्लव नहीं कर सकती। और वे सोचते हैं, अंग्रेज़ों के समान शत्रु को सामरिक शक्ति की सहायता से हरा कर स्वाधीनता पाने की कल्पना करना भी निरा पागलपन है, इसी से वे भारत के विप्लवियों को पागल और अविवेचक अथवा निर्बोध समझते थे और समझते हैं।—अवश्य ही, इन सब समालोचकों की बातें यदि सत्य हैं तो भारत को चिरकाल तक पराधीन ही रहना है, कारण कि पूर्णस्वाधीनता पाने का और कोई रास्ता भी ये समालोचक लोग दिखा नहीं सके, और इस आधुनिक युग में भी रूस और जर्मनी के विप्लव दलों ने प्रबल राजशक्ति को हरा दिया है, यह बात न मानने का भी तो कोई चारा नहीं है; इसी से यह कहना, जान पड़ता है, युक्तिसंगत न होगा कि वर्त्तमान युग में कोई भी प्रजा शक्ति सुप्रतिष्ठित राजशक्ति को विप्लव के रास्ते से सामरिक शक्ति की

सहायता से हरा नहीं सकेगी, और भारत के विप्लव दल के साथ रूसी और जर्मन विप्लव दल की तुलना करने से एक बात विशेष रूप से हमारे ध्यान में आती है कि जर्मन और रूसी विप्लवियों को अपने ही लोगों के विरुद्ध अस्त्र धारण करने पड़े थे, किसी विदेशी राजशक्ति के साथ लड़ाई हो तो सारे स्वदेशवासियों की सहानुभूति और सहायता पाने की यथेष्ट सम्भावना रहती है। इसी से विदेशी राजशक्ति के विरुद्ध विप्लव करना सिविल वार (गृह युद्ध) करने की अपेक्षा अनेक अंशों में सहल है। तो भी यह बात तो सच है कि भारत का विप्लव-प्रयास व्यर्थ हुआ और रूसियों और जर्मनों के विप्लव प्रयास सार्थक हुए हैं। यह बात सच भले ही है, किन्तु इस व्यर्थता के कारण के विषय में ही तो अनेकों के साथ मेरा मतभेद है, और यहाँ मैं इस कारण का ही अनुसन्धान कर रहा हूँ। भारतीयों को सचमुच विप्लव के पथ में जाना चाहिए कि नहीं इसकी मैं कोई आलोचना नहीं कर रहा हूँ, यहाँ पर तो केवल अपने विरुद्ध पक्ष वालों की प्रधान युक्ति का ही विश्लेषण कर दिखाने की तनिक सी चेष्टा की है। एक बात पाठक मन में रक्खें कि मैं अतीत की ही बातों की आलोचना कर रहा हूँ और अतीत की आलोचना करना ही इतिहास लिखते समय ठीक है, इसी से भविष्य में क्या होगा अथवा क्या होना उचित है यह मेरा आलोच्य विषय नहीं है। अस्तु, जो भी हो, जो हम कह रहे थे उसे ही फिर कहें; कह रहे थे कि भारतीयों का विप्लव-प्रयास व्यर्थ क्यों हुआ?

अनेक लोग कहते हैं कि उपयुक्त समय नहीं आया था इसी कारण भारतीयों का विप्लव-प्रयास व्यर्थ हुआ, अर्थात् विप्लव-प्रयास को सार्थक करने के लिए जो परिस्थिति अपेक्षित है वह परिस्थिति भारत में अब भी नहीं है, भारत के जन साधारण सचमुच विप्लव करना नहीं चाहते, इसी लिए विप्लव का प्रयास व्यर्थ हुआ। भारतवासी सचमुच स्वाधीनता नहीं चाहते, पराधीनता की ज्वाला को सच ही अनुभव नहीं करते, इसी से वे विप्लव पथ में अग्रसर नहीं होते; बहुतों के मत में विप्लवियों के व्यर्थ होने का यही सर्व-प्रधान कारण है।

किन्तु भारतवासी सच ही स्वाधीनता नहीं चाहते, पराधीनता की ज्वाला का अनुभव नहीं करते, यह तो मैं नहीं मानता, किन्तु उस स्वाधीनता को पाने के लिए जिस त्याग, जिस वीरता की आवश्यकता होती है भारतवासियों में उन सब गुणों का एकदम अभाव है, यह बात न मानने का भी तो कोई चारा नहीं है। किन्तु जो लोग यह कहते हैं कि देश के अशिक्षित जन साधारण (Mass) ने इस विप्लवान्दोलन में योग नहीं दिया इसी कारण विप्लव का प्रयास व्यर्थ हुआ उन की बात भी मुझे ठीक नहीं मालूम होती—कारण कि विप्लवियों ने कभी किसी भी दिन प्रकट या गुप्त रूप से देश के किसानों अथवा कुली-मज़दूरों को इस विप्लवान्दोलन में भाग लेने के लिए पुकारा ही नहीं, देश के शिक्षित लोगों ने जब जिस रूप में जन साधारण (Mass) को पुकारा है, जन साधारण ने अनेक त्याग करके भी बहुधा इस पुकार का उत्तर

दिया है। देश के शिक्षित लोग अपने कर्तव्य को समझ लेने पर भी जो काम नहीं कर सकते, देश के अशिक्षित जन साधारण अनेक बार अपनी सहज बुद्धि से वह काम अनायास ही कर डालते हैं। अवश्य अशिक्षित जनता कर्त्तव्य की ख़ातिर बहुत दिन तक त्याग अथवा कष्ट स्वीकार नहीं कर सकती, इसी से अशिक्षित जनता के खयाल पर निर्भर करके कोई भी बड़ा या स्थायी कार्य करना सम्भव नहीं।

और जो लोग यह कहते हैं कि देश के अधिकांश लोग अशिक्षित हैं इसीलिए अब भी विप्लव का प्रयास सार्थक नहीं होता, और जब तक देश के अधिकांश लोग शिक्षित नहीं होते, तब तक विप्लव का प्रयास व्यर्थ होगा ही, इनसे मैं रूस का दृष्टान्त दिखाकर कह सकता हूँ कि विप्लव-प्रयास की सार्थकता अथवा व्यर्थता देश के लोगों के लिखना पढ़ना जानने न जानने पर निर्भर नहीं करती।

तो फिर भारत का विप्लव प्रयास व्यर्थ क्यों हुआ? किन्तु सच ही क्या भारतीय विप्लवियों का इतना त्याग, इतना अद्‌भुत साहस सब एकदम व्यर्थ ही हुआ है? इन्होंने कितने ही निर्यातन सहे, कितनी विषम विपत्तियों के बीच ऐसी निष्ठा के साथ अविचलित रहे, कितनी ही दुर्घटनाओं के तीव्र आघात, कितने ही विश्वासघातकों के निर्दय व्यवहार, और कितनी ही पराजयों की मर्मपीड़ा सह कर ऐसी दुर्दमनीय दृढ़ता के साथ वे बार-बार अपने सङ्कल्प की साधना में अग्रसर रहे, यह सब क्या सच ही एकदम व्यर्थ हो गया? क्षात्रशक्ति के आदर्श ने क्या देश

में कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं पाई ? मरने का डर क्या भारतवासियों के मन से कुछ भी दूर नहीं हुआ ? देश के अन्यान्य प्रकाश्य आन्दोलनों पर विप्लव-आन्दोलन क्या किसी तरह का भी प्रभाव नहीं डाल पाया ? वर्ल्ड पालिटिक्स (विश्व की राजनीति) पर, संसार के सभ्य देशों में क्या भारत का यह विप्लवान्दोलन कुछ भी छाया नहीं डाल सका ? अथवा इस विप्लवान्दोलन के कारण भारत का गौरव जगत् की सभा में कुछ भी नहीं बढ़ा ? इस सम्बन्ध में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर ऐशर लिखित 'पैन-जर्मनिज़म', बर्न हार्डी कृत 'जर्मनी ऐन्ड दि नेक्स्ट वार' इत्यादि ग्रन्थों की ओर ध्यान देने का पाठकों से अनुरोध करता हूँ—इस से वे मेरी बात का तात्पर्य बहुत कुछ हृदयङ्गम कर सकेंगे।

बहुत लोग कहते हैं कि विप्लवियों के कार्यों के कारण मंगल की अपेक्षा अमंगल ही अधिक हुआ, अंग्रेज़ सरकार को इन विप्लवियों के कारण ही प्रजापीड़न का अधिक सुयोग मिल गया है, इसीसे नित्य नये-नये कठोर से कठोर क़ानूनों के सहारे भारत के वैध खुले आन्दोलनों में भी अंग्रेज़ सरकार अनेक प्रकार से बाधायें डाल पाई है। पर सच बात कहें तो वैध प्रकाश्य आन्दोलन का दमन होने के बाद से ही विप्लव का कार्य-कलाप प्रकाशित होने लगा है, और रौलट कमिटी की सिडीशन रिपोर्ट में अंग्रेज़ों ने कदाचित् अनजान में ही इस प्रकार सब विषयों की आलोचना की है जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विप्लवियों के प्रत्येक उद्योग के कारण ही बारी-बारी अंग्रेज़ों ने भारत को राजनैतिक अधिकार दिए हैं।

यह बात भी अवश्य ही बहुत लोग स्वीकार करते हैं कि भारत को जो कुछ सामान्य राजनैतिक अधिकार मिले हैं वे मुख्यतः भारत के इन दृढ़चित्त विप्लवियों के प्रयास से ही मिले हैं।

ख़ैर, जो भी हो, विप्लवियों ने जो चाहा था वह तो नहीं कर पाया; विप्लवी देश को स्वाधीन करना चाहते थे, सो वे कर नहीं सके, विप्लवियों कि मुख्य चेष्टा व्यर्थ हुई।

मैं समझता हूँ, चिन्तनशील प्रतिभावान् उपयुक्त नेता का अभाव ही इस व्यर्थता का सबसे बड़ा कारण था। रूस या जर्मनी के विप्लवदल के बीच ऐसे बहुत व्यक्ति हैं या थे, जो संसार के श्रेष्ठ चिन्तनशील व्यक्तियों में आसन पाने योग्य थे किन्तु भारतीय विप्लव दल में ऐसे कोई भी चिन्तनशील शक्तिमान् व्यक्ति न थे जिन्हें ठीक थिंकर (विचारक) कहा जा सके, इसी से भारतीय विप्लव दल अपना प्रचार-कार्य, कहना चाहिए, कुछ भी नहीं कर पाया और इसी लिए इस विप्लव दल का प्रभाव वैसा नहीं दिखाई दिया जैसा होना चाहिये था। यह भले ही सच है कि भारत के इस विप्लववाद के अन्दर विवेकानन्द का ज्वलन्त आदर्श वर्तमान था और भारतीय विप्लवियों में से अधिकांश: इसी महापुरुष की प्रेरणा से अनुप्राणित थे किन्तु विवेकानन्द के समान कोई भी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति साक्षात् रूप से इस विप्लव दल में न थे। श्री अरविन्द घोष और लाला हरदयाल यदि अन्त तक इस दल में रहते तो जान पड़ता है विप्लव दल का यह दैन्य बहुत कुछ दूर हो जाता, किन्तु वे भी

अन्त में इस दल को छोड़ गये। इन्हीं अरविन्द के प्रसंग में मेरे एक परिचित व्यक्ति मुझ से एक प्रसिद्ध कविता के कुछ एक पद कहा करते थे, यहाँ उन्हें उद्धृत करने का लोभ नहीं रोक सकता हूँ:—

He is gone to the mountain
And he is lost to the forest;
The spring is dried in the fountain.
When the need was the sorest.

इस प्रकार के चिन्तनशील प्रतिभावान् पुरुषों की बात छोड़ भी दें, तो इस विप्लवदल में किसी बड़े साहित्यिक, किसी बड़े समाचार पत्रों के लेखक अथवा किसी बड़े कवि ने भी योग नहीं दिया। एक तरह से कह सकते हैं, कि इस विप्लव दल में इन्टलैक्चुअल्स (intellectuals) नहीं थे, और इस प्रकार के लोगों का विशेष अभाव था, इसी कारण यह विप्लव दल प्रचार-कार्य की ओर प्रायः उदासीन ही रहा। जो कुछ गुप्त पत्रिकायें आदि बीच-बीच में प्रचारित होती थीं, वे केवल सामयिक उत्तेजना पूर्ण प्रतिहिंसा के उच्छ्वास से भरी होती थीं, इन सब लेखों में विचारशीलता का कोई भी परिचय नहीं पाया जाता, जीवन का कोई नया आदर्श इन से प्रकट नहीं होता। भारत के साहित्य में इन का कोई स्थान नहीं रहेगा, इस में कोई सन्देह नहीं। भारतीय विप्लवी किसी स्थायी साहित्य की सृष्टि नहीं कर सके। इस प्रकार विप्लव दल का प्रयास व्यर्थ होना ही था।—तो भी विप्लवान्दोलन के इस प्रथम युग में

वारीन्द्र और उपेन्द्र द्वारा परिचालित युगान्तर पत्रिका ने इस तरफ़ बहुत काम किया था। इस युगान्तर पत्रिका का अद्भुत प्रभाव आज भी हम देखते हैं। इसी से वारीन्द्र एक दिन गर्व के साथ अन्डमन में कहते थे, "जो पथ मैं एक बार दिखा आया हूँ, बंगाल आज भी उसी एक पथ का अनुसरण किये चलता है, कोई भी नया पथ निकालने की ओर किसी ने क्षमता न दिखाई; छिः!"

इसके सिवाय यह विप्लव दल प्रकाश्य रूप से अपनी कोई भी कार्य-धारा नहीं चला सका। इस विप्लव दल में ऐसे कोई भी नेता न थे जो प्रकाश्य आन्दोलन में भाग ले कर तिलक अथवा गान्धी के समान मर्यादा के अधिकारी हो सकते। इसी से यह विप्लवान्दोलन जन साधारण से क्रमशः अलग हो कर एक संकीर्ण दायरे की सीमा में बन्द हो जाता है। इस प्रकार प्रकाश्य आन्दोलन के नेता न हो सकने पर देश की अशिक्षित जनता को अपने आदर्श की ओर नहीं लाया जा समझ सके, सकता, यह बात भी विप्लव दल के नेता लोग शायद भली भाँति नहीं या शायद उन के बीच ऐसे उपयुक्त आदमियों का अभाव था इसीकारण वे बाध्य हो कर इस विषय में उदासीन रहे। विप्लवदल में उपयुक्त नेता का अभाव होने से ही भारत के दूसरे राजनैतिक दलों के नेता अनेक बार इस विप्लव दल को अनेक प्रकार से एक्सप्लोयट करते (ठगते) रहे हैं। जो हो उस से देश की कोई विशेष क्षति तो भले हीन हीं हुई, किन्तु विप्लव दल की दीनता उस से विशेष रूप से प्रकट होती है।

इस के अलावा और जिन सब कारणों से यह विप्लव का प्रयास व्यर्थ हुआ उन का, "बन्दी-जीवन" में अनेक जगह प्रसंगानुसार उल्लेख कर आये हैं, यहाँ उन सब बातों को दुहराने की आवश्यकता नहीं।

किन्तु इस विप्लवान्दोलन के विफल होने के बाद भारत के अनेक विप्लवियों ने अच्छे कृतित्व का परिचय दिया है। जिन सब गुमनाम युवकों को यहाँ कोई पूछता भी न था, यहाँ तक कि विप्लव दल में भी जो नेतृत्व नहीं पा सके; देश के लोग जिन्हें अर्धशिक्षित या साधारण रूप से शिक्षित कहते थे, विदेश के कार्यक्षेत्र में उन्हीं युवकों की अनेक प्रकार से अपनी शक्ति का परिचय देने की कहानियाँ सुनी जाती हैं। सभ्य जगत् में आज उन का स्थान हमारे देश के विख्यात नेताओं की अपेक्षा अधिक भले ही न हो, कम नहीं है। लाजपत के समान नेताओं की अपेक्षा भी इस विप्लव दल के नेताओं ने विदेश में अधिक सम्मान पाया है, यह बात भी सुनने में आई है। ऐसा होने का कारण है, इन युवकों ने संसार के श्रेष्ठ नेताओं के संस्पर्श में आने पर अथवा विदेश की स्वाधीन आबहवा के संस्पर्श में आने पर देखा है कि उन का वही पुराना गुप्त संकीर्ण पथ ही एक मात्र पथ नहीं है, और उन्हों ने जब नये मार्गों में क़दम रक्खा, तब वह अन्दर की प्रसुप्त शक्ति अवसर और सुयोग पा कर पूर्ण रूप से विकास पा उठी।

इन सब विदेश प्रवासी विप्लवियों के जीवन से यह भी जाना जाता है कि विप्लव दल में सच ही ऐसे अनेक गुमनाम युवक थे जिनके

विषय में हमारे देशवासी शायद अब भी कुछ विशेष नहीं जानते,—और जो अवकाश और सुयोग पाने पर शायद एक दिन संसार के श्रेष्ठ विचारकों के साथ एक आसन पर बैठने लायक हो सकते हैं। पुस्तक पढ़ने या परीक्षायें पास करने से ही तो विचारशील नहीं हुआ जाता, पुस्तक पढ़ना एक बात है और विचारक (Thinker) होना दूसरी बात। जगत् के एक श्रेष्ठ विचारक मनीषी हर्बर्ट स्पेन्सर तो मातृभाषा और फ्रान्सीसी भाषा के सिवाय और कोई भी भाषा न जानते थे, और ऐसे अनेक पण्डित हैं जो बहुत भाषाओं के सचमुच पण्डित हैं किन्तु वे तो हर्बर्ट स्पेन्सर के समान नहीं हैं। हमारे देश में अनेक लोग थे जो विवेकानन्द की अपेक्षा अधिक पण्डित थे, किन्तु विवेकानन्द के समान विचारक और कितने हुए हैं ! जगत् के अनेक विचारशील कवियों और दार्शनिकों की जीवन कथा देखने से यह बात समझी जा सकती है कि पाण्डित्य और विचारशीलता एक वस्तु नहीं।

"पेड़ जैसे नहीं जानता कि कब उस के फूल फूट निकलेंगे पक्षी जैसे नहीं जानता कि ठीक कब उसे गाना गाने की चाह होगी, प्राणों की समूची शक्ति में से उन:का उद्यम जागता है, इस लिए उन्हें जैसे सोच-विचार कर इरादा नहीं बनाना पड़ता।" उसी प्रकार जो विचारशील हैं, भावुक हैं, जो सचमुच ही प्रतिभावान् थिंकर्स (विचारक) हैं वे पण्डित हुए बिना भी पोथी पढ़ने या परीक्षाएँ पास करने में वैसी

योग्यता दिखाये बिना भी संसार के अनेक अद्भुत विस्मयजनक रहस्यों की घोषणा कर सकते हैं ।

विप्लवियों के कार्यकलाप को बहुत लोग पागलपन कहते हैं, वे कहते हैं, दिमाग़ में कुछ ख़राबी हुए बिना कोई विप्लव दल में योग नहीं दे सकता ।—विप्लवियों के अन्दर सुनते हैं सुबुद्धि का—अक्लमन्दी का—विशेष अभाव है, किन्तु रविबाबू ने कहा है,—"सुबुद्धि नाम का पदार्थ मर्त्य लोक में पाया जाता है, किन्तु ऊँचे दर्जे का जो ख़ालिस पागलपन है वह देवलोक की वस्तु है । इसी से जान पड़ता है कि सुबुद्धि की गढ़ी हुई चीज़ें टूट फूट पड़ती हैं । और पागलपन जिन चीज़ों को उड़ा कर लाता है वे बीज की तरह जंगलों के जंगल उगा डालती हैं ।"
